आनन्दभूषण अग्रवाल

एकांकी नवरत्न

एकांकी नवरत्न

एकांकी नवरत्न

(उत्कृष्ट एकांकी नाटकों का संग्रह)

संकलनकर्ता और सम्पादक

डा० भारतभूषण अग्रवाल

रंजन प्रकाशन, आगरा

प्रकाशक :

रंजन प्रकाशन

बांके विलास, सिटी स्टेशन मार्ग, आगरा-२८२००३

मुद्रक :

दी एजुकेशनल प्रेस

सिटी स्टेशन मार्ग, आगरा-२८२००३

संस्करण : अग्रिम प्रति, २६ नवम्बर, १९७३

मूल्य : पांच रुपये

निवेदन

हिन्दी के एकांकी नाटकों का यह संकलन साहित्य के उन विद्यार्थियों को दृष्टि में रखकर किया गया है जो इस विद्या के विकास और इतिहास का ज्ञान पाना चाहते हैं। इसीलिए मैंने यह चेष्टा की है कि सभी महत्त्वपूर्ण एकांकीकारों के प्रतिनिधि एकांकी एक ही स्थान पर संकलित कर दिये जायें। साथ ही प्रत्येक लेखक के व्यक्तित्त्व और कृतित्व का परिचय भी दे दिया गया है, और भूमिका के रूप में एकांकी के स्वरूप पर और हिन्दी एकांकी के क्रम-विकास पर भी प्रकाश डाला गया है। मैं आशा करता हूँ कि यह संकलन अपने उद्देश्य में सफल होगा।

—भारतभूषण अग्रवाल

साहित्य अकादमी,
नई दिल्ली

अनुक्रम

एकांकी का संक्षिप्त परिचय

एकांकी की परिभाषा :

'एकांकी' समस्त पद है जो दो शब्दों से मिलकर बना है—एक+अंक+ी। इसलिए इसका अर्थ है : एक अंक वाला। एकांकी अथवा एकांकी नाटक उस नाटक को कहते हैं जिसमें केवल एक ही अंक होता है। साधारणतः बड़े अथवा पूर्णाकार नाटक में तीन से लेकर पाँच तक अंक होते हैं। इस प्रकार एकांकी नाटक पूर्णाकार नाटक की अपेक्षा काफी छोटा होता है।

छोटा होने के कारण एकांकी नाटक का विस्तार भी कम होता है, और उसकी अभिनय-अवधि भी कम होती है। इसलिए उसमें प्रायः पात्रों की संख्या भी बहुत सीमित होती है।

एकांकी और पूर्णाकार नाटक का भेद

हम जानते हैं कि पूर्णाकार नाटक बड़ा होता है, और एकांकी नाटक छोटा। तो क्या हम एकांकी नाटक को पूर्णाकार नाटक का छोटा या लघु रूप कह सकते हैं? नहीं, ऐसा नहीं है। पूर्णाकार नाटक और एकांकी नाटक में आकार का ही अन्तर नहीं है, उसमें प्रकार का भी भेद है। यह भेद प्रायः वही है जो उपन्यास और कहानी में है। उपन्यास में सारे जीवन का सम्पूर्ण चित्र होता है, पर कहानी जीवन की किसी एक ही घटना पर आधारित होती है। उपन्यास में वर्णित कथानक को हम कितने ही संक्षिप्त रूप में क्यों न लिख डालें, वह कहानी का रूप नहीं ले सकता। ठीक यही बात पूर्णाकार नाटक और एकांकी नाटक पर लागू होती है। पूर्णाकार नाटक में किसी एक चरित्र अथवा कई चरित्रों के जीवन-व्यापी उतार-चढ़ाव और संघर्ष का चित्र होता है। इसलिए उसमें कई अंकों का विधान

होता है, प्रत्येक अंक जीवन के किसी एक मोड़ पर आकर थम जाता है। पर एकांकी नाटक में मात्र एक ही अंक होता है, इसलिए उसमें जीवन के किसी एक ही मोड़ का, अथवा किसी एक ही घटना का चित्र होता है। पूर्णाकार नाटक को छोटा करने से वह एकांकी नाटक नहीं बनेगा। इसी प्रकार, एकांकी नाटक को विस्तार में लिखने से वह पूर्णाकार नाटक नहीं बन सकता। उनमें आकार का ही नहीं, प्रकार का भी भेद है।

हिन्दी नाटक की पृष्ठ भूमि :

भारतवर्ष में नाटक की परम्परा बहुत प्राचीन है। आज से हजारों वर्ष पहले ही संस्कृत साहित्य में अनेक सफल नाटकों की रचना हो चुकी थी। संस्कृत के इन नाटककारों में से चार के नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं: शूद्रक, भास, कालिदास और भवभूति। कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक तो विश्व के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में गिना जाता है। प्रायः सभी विदेशी भाषाओं में उसका अनुवाद किया जा चुका है। हमारे इन संस्कृत नाटककारों ने अपने नाटकों में प्रायः पौराणिक अथवा ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन का ही चित्रण किया है। इसलिए साधारणतः उन्होंने पूर्णाकार नाटक ही लिखे हैं। प्राचीन काल के सामाजिक जीवन में अवकाश की भी कोई विशेष कमी न थी। इसलिए एकांकी नाटकों की कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं हुई।

फिर भी, प्राचीन काल में एकांकी नाटकों का नितान्त अभाव न था। संस्कृत के नाट्याचार्यों ने नाटकों के भेद बताते हुए अंक, व्यायोग, भाण, वीथी आदि नाटक भी गिनाए हैं जो एक प्रकार के एकांकी नाटक ही हैं। पर ये नाटक कभी-कभार ही लिखे जाते थे और इनका विशेष प्रचलन नहीं था।

मध्य-युग में भारतवर्ष में नाटकों की धारा बहुत क्षीण हो गई। नाटकों की दृष्टि से यह काल बड़ा सूखा रहा। अंग्रेजों के आगमन के बाद जब भारतवर्ष में आधुनिक युग का प्रादुर्भाव हुआ, तब प्राचीन नाट्य-

परम्परा को फिर से जीवित किया गया, और नए-नए नाटकों की सृष्टि होने लगी।

हिन्दी नाटक के क्षेत्र में आधुनिक युग का श्रीगणेश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया। उन्होंने प्राचीन संस्कृत नाटक के रूप में आवश्यक परिवर्तन कर अनेक सुन्दर नाटकों की रचना की। उनके नाटकों में 'सत्य हरिश्चन्द्र' और 'अंधेर नगरी' बहुत प्रसिद्ध हैं।

भारतेन्दु से लेकर जयशंकर 'प्रसाद' तक आधुनिक युग में छोटे बड़े अनेक नाटककार हुए जिन्होंने भाँति-भाँति के नाटक लिखकर हिन्दी साहित्य का भण्डार भरा और नाट्य-परम्परा को आगे बढ़ाया। इन नाटकों में जहाँ एक ओर संस्कृत नाटक की प्राचीन परम्परा का प्रभाव स्पष्ट दीखता है, वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य नाटकों का, और विशेषतः अंग्रेजी नाटकों का प्रभाव भी दिखाई देता है। पाश्चात्य नाटकों का यह प्रभाव हिन्दी नाटकों में तीन पथों से प्रविष्ट हुआ :

(१) पाश्चात्य साहित्य के प्रत्यक्ष अध्ययन से
(२) बँगला नाटकों के माध्यम से
(३) पारसी रंगमंच के माध्यम से

ब्रिटिश शासनकाल में अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्ययन हमारी शिक्षा का अनिवार्य अंग था। फलस्वरूप भारतीय लेखक पाश्चात्य नाट्य-साहित्य के सम्पर्क में भी आए और उन्होंने उन नाटकों से अपनी रुचि-प्रकृति के अनुसार कभी थोड़ा और कभी अधिक प्रभाव ग्रहण किया। पाश्चात्य प्रभाव के ही कारण पूर्णाकार नाटकों के आकार में भी कुछ कमी हुई, दृश्य-विधान के विवरण बढ़े और संकलन-त्रयी की ओर भी अधिक ध्यान दिया जाने लगा।

आधुनिक युग में हिन्दी साहित्य पर बँगला साहित्य का काफी प्रभाव पड़ा है। अंग्रेजों का पदार्पण पहले बंगाल में ही हुआ था, इसलिए बंगाल ने ही पहले आधुनिक प्रवृत्तियाँ ग्रहण कीं। कलकत्ते में व्यावसायिक रंग-

मंच की स्थापना के कारण बँगला में नित नए नाटक रचे जाने लगे। कालान्तर में हिन्दी के लेखकों ने इन नाटकों से अपनी रचना के लिए यथेष्ट प्रभाव ग्रहण किया।

इसी प्रकार हिन्दी नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव पारसी रंगमंच के माध्यम से भी आया। पारसी रंगमंच व्यावसायिक मंच था जिसके प्रदर्शन समय-समय पर देश-भर के नगरों में होते थे। अभिनय और मंच-शैली की दृष्टि से पारसी रंगमंच इंग्लैंड के एलिजाबेथ-कालीन मंच से प्रभावित था, यद्यपि उसमें और भी बहुत-से प्रभावों का मेल हो गया था। जिन हिन्दी नाटककारों ने पारसी रंगमंच से प्रभाव ग्रहण किया उनमें स्वर्गीय राधेश्याम कथावाचक का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

एकांकी का जन्म और विकास :

अनुमान किया जाता है कि पाश्चात्य नाट्य-साहित्य का यह प्रभाव हिन्दी में एकांकी नाटक के जन्म के प्रमुख कारणों में है। पर यह सच भी हो, तो भी यह कहना सही नहीं होगा कि हिन्दी के नाटककारों ने महज पश्चिम की नकल करने के उद्देश्य से ही एकांकी नाटकों की रचना की। नहीं, हिन्दी में एकांकी के जन्म के उतने ही मौलिक और प्रबल कारण थे, जितने पश्चिम में। यह ठीक है कि अपने आधुनिक रूप में एकांकी नाटक की रचना पश्चिम में पहले हुई, हिन्दी में कुछ देर बाद। पर उसका मुख्य कारण यही है कि जिन परिस्थितियों में एकांकी नाटक की रचना होती है, वे हमारे यहाँ कुछ बाद में प्रकट हुईं।

हम अभी कह आए हैं कि एकांकी नाटक पूर्णाकार नाटक की तुलना में काफी छोटा होता है। इसी बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि छोटे नाटकों की आवश्यकता का अनुभव तभी होता है, जब सामाजिक जीवन इतना व्यस्त हो जाय कि पूर्णाकार नाटक के अभिनय और प्रेक्षण के लिए अवकाश न हो। पश्चिम में सामाजिक जीवन की ऐसी व्यस्तता पहली बार प्रथम विश्व-युद्ध के आसपास ही प्रकट हुई। और तभी पहले एकांकी नाटक रचे गए।

पश्चिम में एकांकी नाटकों के प्रादुर्भाव का एक और कारण है जो बड़ा रोचक भी है। दैनिक जीवन की व्यस्तता के कारण वहाँ के नाट्य-दर्शकों में बहुतेरे ऐसे थे जो लाख चेष्टा करने पर भी रंगशाला में समय पर नहीं पहुँच पाते थे। जब वे पहुँचते तब तक नाटक का कुछ भाग समाप्त हो चुकता था। नाटक के बीच में उनके अचानक आ टपकने से बाकी दर्शकों के आनन्द में विघ्न पड़ता था। इसलिए, अपने दर्शकों की सुविधा के लिए नाटक के प्रबन्धकों ने मुख्य नाटक के अभिनय के पहले छोटे-छोटे नाटक दिखाना शुरू कर दिया, ठीक उसी प्रकार जैसे हमारे यहाँ सिनेमा-भवनों में मुख्य चित्र के पहले एकाध छोटे चित्र भी दिखाए जाते हैं। इन छोटे-छोटे नाटकों का प्रारम्भ में मात्र यही उद्देश्य होता था कि परदा उठने तक दर्शकों के मन बहलाते रहें। इसलिए इन्हें 'कर्टेन रेज़र' (परदा उठाने वाले नाटक) कहते थे। ये 'कर्टेन रेज़र' ही आधुनिक एकांकी के जनक हैं। धीरे-धीरे ये नाटक लोकप्रियता प्राप्त करते गए; यहाँ तक कि उन्होंने विकसित होकर अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व बना लिया।

हिन्दी में एकांकी का जन्म भी मंच की ऐसी ही आवश्यकता के कारण हुआ। यों तो किसी न किसी रूप में छोटे नाटक भारतेन्दु-काल से ही लिखे जा रहे थे (जयशंकर 'प्रसाद' के नाटक 'एक घूंट' में तो एकांकी के प्रायः सभी तत्त्व विद्यमान हैं) पर स्पष्ट रूप से एकांकी का जन्म-काल सन् १६३५ माना जा सकता है जब भुवनेश्वर प्रसाद का एकांकी-संग्रह 'कारवाँ' प्रकाशित हुआ। तीन वर्ष बाद सन् १६३८ में जब प्रसिद्ध मासिक पत्र 'हंस' ने अपना एकांकी-विशेषांक प्रकाशित किया तब तक हिन्दी में एकांकी अपने सही पद पर प्रतिष्ठित हो चुका था।

हिन्दी में एकांकी के इस अचानक आविर्भाव और परवर्ती प्रतिष्ठा का मूल कारण है तत्कालीन परिस्थितियाँ। सन् १६३५ तक पारसी रंग-मंच लुप्तप्राय हो चुका था, और हिन्दी प्रदेश में व्यावसायिक रंगमंच एक प्रकार से समाप्त हो गया था। स्वतन्त्रता के आस-पास बम्बई में

विख्यात अभिनेता और कलाकार श्री पृथ्वीराज कपूर ने 'पृथ्वी थियेटर्स' की स्थापना कर हिन्दी में नियमित रंगमंच की प्रतिष्ठा का पुनः एक साहस-पूर्ण प्रयास किया था, पर अन्त में वह भी बन्द कर देना पड़ा। आज तक हिन्दी में व्यावसायिक रंगमंच स्थापित नहीं हो सका है।

फलतः हिन्दी नाटक के विकास का भार अव्यावसायिक अथवा शौकिया रंगमंच के कंधों पर आ पड़ा। सभी अव्यावसायिक मंचों की भाँति हिन्दी का अव्यावसायिक रंगमंच भी उन कला-प्रेमी जनों के हाथ में था जो नाटक और अभिनय में रुचि तो रखते थे, पर उसके लिए अपना सारा समय नहीं दे सकते थे। इसी कारण वे पूर्णाकार नाटक की अपेक्षा एकांकी नाटक की ओर झुके, क्योंकि छोटा होने के कारण एकांकी नाटक उनसे पूरे समय की माँग नहीं करता था। पात्रों की सीमित संख्या, मंच-व्यवस्था की सरलता आदि बातें भी ऐसी थीं जो उनके अनुकूल पड़ती थीं। अतः एकांकी नाटकों की माँग बढ़ने लगी। अव्यावसायिक मंच के ये अभिनेता-मण्डल अधिकतर शिक्षा-संस्थाओं में स्थित थे जो वार्षिक समारोहों और सांस्कृतिक आयोजनों के अवसर पर एकांकी नाटकों का अभिनय आवश्यक और उपयोगी समझते थे। उनकी माँग पूरी करने के लिए धड़ाधड़ एकांकी लिखे जाने लगे।

एकांकी के इस विकास में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं और रेडियो-केन्द्रों ने भी महत्त्वपूर्ण योग दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन के फलस्वरूप ज्यों-ज्यों पत्र-साहित्य विकसित होता जाता था, और पाठकों की संख्या बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों पाठ्य-सामग्री की माँग भी। इसलिए कविता के साथ-साथ कहानियों और एकांकियों की माँग भी दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगी। इन्हीं दिनों पहले दिल्ली में, फिर लखनऊ में और फिर कुछ वर्षों बाद हिन्दी क्षेत्र के अन्य प्रमुख नगरों में आकाशवाणी के केन्द्र स्थापित हुए जो नियमित रूप से नाटकों का प्रसारण करने लगे। इन केन्द्रों को अपने विविध प्रोग्रामों के लिए निरन्तर हर प्रकार के एकांकियों की माँग रहती थी,

अतः शीघ्र ही हिन्दी प्रदेश में एकांकी लेखकों की अच्छी-खासी संख्या तैयार हो गई जो नियमित रूप से एकांकी नाटकों की रचना करते थे। फलतः दसेक वर्षों के अल्प समय में ही एकांकी नाटक हिन्दी नाट्य साहित्य का प्रमुख अंग हो गया। आज भी स्थिति यही है। व्यावसायिक रंगमंच के अभाव में पूर्णाकार नाटकों की रचना आज भी बहुत सीमित है, पर अव्यावसायिक रंगमंच के लिए, पत्र-पत्रिकाओं के लिए, और आकाशवाणी से प्रसारण के लिए एकांकी नाटक आज भी बहुत बड़ी संख्या में रचे जा रहे हैं।

एकांकी का स्वरूप

एकांकी की सीमा ही उसका स्वरूप निर्धारित करती है। जैसा कि हम कह आये हैं, एकांकी अपेक्षाकृत लघु नाटक होता है। सामान्यतः उसकी अभिनय-अवधि तीस मिनट मानी जा सकती है। वैसे पन्द्रह मिनट के भी सफल एकांकी मिलते हैं, और ४५-५० मिनट के भी। इसी कारण एकांकी की सम्पूर्ण प्रकृति में एक सघनता और क्षिप्रता रहती है। नाटक के प्रारम्भिक क्षण से ही कथा बड़े वेग से प्रवाहित होने लगती है, और उसकी परिणति पर पहुँचते ही समाप्त हो जाती है। यही कारण है कि उसमें अनावश्यक अथवा भरती के दृश्यों अथवा पात्रों के लिए कोई स्थान नहीं होता। साधारणतः एकांकी में एक ही दृश्य होता है, और पात्रों की संख्या अनिवार्यता तक ही सीमित रहती है।

इसी सीमा के कारण एकांकी में चरित्र के क्रम-विकास के लिए स्थान प्रायः नहीं होता। पूर्णाकार नाटक में प्रधान चरित्रों का क्रमिक विकास बड़ी कुशलता से दिखाया जा सकता है, पर एकांकी में लेखक की दृष्टि मुख्य रूप से चरित्र-चित्रण पर नहीं होती, कथानक अथवा घटना पर होती है। इसीलिए सफल और प्रभावोत्पादक एकांकी में कुतूहल एवं आकस्मिकता के तत्त्व आवश्यक होते हैं, ताकि वे दर्शक-मन को बाँधे रहें। कुशल एकांकीकार वर्णित घटना को इस प्रकार उपस्थित करता है कि पहले वाक्य से ही दर्शक का कौतूहल जागृत हो जाए और अन्त तक बना

रहे। यही कारण है कि एकांकीकार सदा लाघव अथवा संक्षेप का सहारा लेते हैं, और किसी भी प्रसंग अथवा कार्य-व्यापार को अनावश्यक विस्तार नहीं देते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एकांकी समग्र जीवन का सम्पूर्ण चित्र नहीं देता, किसी एक ही प्रसंग अथवा घटना का चित्रण प्रस्तुत करता है। उसमें चरित्र-चित्रण प्रधान नहीं होता, वरन् कौतूहल, आकस्मिकता और क्षिप्रता प्रधान होते हैं जिनके लिए संक्षेप का सहारा लिया जाता है। जैसा कि एक विदेशी आलोचक ने कहा है, "एकांकी उस खिड़की के समान है जिसमें से हमें जीवन की बस एक ही झलक मिलती है।" इसी प्रकार डा० नगेन्द्र का कथन है : "एकांकी में जीवन की किसी विशेष परिस्थिति का अथवा उसके एक उद्दीप्त क्षण का चित्र रहता है।"

एकांकी के इस स्वरूप को नाटक में सफलतापूर्वक ढालने के लिए लेखक कार्य की एकता, काल की एकता और स्थल की एकता का सहारा लेते हैं। इन्हीं को संकलन-त्रयी कहते हैं।

संकलन-त्रयी :

संकलन-त्रयी एक प्रसिद्ध नाट्य-सिद्धान्त है जिसका प्रथम निर्धारण प्राचीन यूनानी नाट्य-शास्त्री अरस्तू ने किया था। यूनान से यह सिद्धान्त पश्चिम के अन्य देशों में पहुँचा। इसके अनुसार नाटक की सम्पूर्ण वस्तु इस ढंग से प्रस्तुत की जाती है कि उसमें कार्य, काल और स्थल की एकता अथवा एकसूत्रता बनी रहती है। इसीलिए इस सिद्धान्त को संकलन-त्रयी का नाम दिया गया है।

कार्य-संकलन अथवा कार्य की एकसूत्रता के अन्तर्गत यह माना जाता है कि नाटक में पात्रों का सारा कार्य-व्यापार मुख्य कथानक अथवा घटना को विकसित करने में योग दे। किसी भी पात्र का कार्य ऐसा न हो जो कथानक के लिए अनावश्यक हो।

काल-संकलन अथवा काल की एकसूत्रता से यह अभिप्राय है कि नाटक

की कथावस्तु एक ही काल की घटना हो। विभिन्न दृश्यों अथवा प्रसंगों के बीच में काल का व्याघात इस सिद्धान्त के विरुद्ध माना जाता है। आदर्श काल-संकलन वह है जिसमें नाटक की घटना वास्तविक जीवन में भी उतने ही समय की हो जितनी अवधि में वह नाटक में प्रस्तुत की जाती है।

स्थल-संकलन अथवा स्थल की एकता से यह अभिप्राय है कि नाटक में वर्णित सारी घटनाएँ एक ही स्थल पर घटित दिखाई जाएँ। इस नियम का पालन करने के उद्देश्य से नाटककार कभी-कभी अन्यत्र घटने वाली घटनाओं का वर्णन द्वारा समावेश कर अपना काम चलाते हैं।

प्राचीन यूनानी नाट्य-परम्परा में इस संकलन-त्रयी का बहुत सफल पालन किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि अपने लघु-रूप के कारण एकांकी में इनके पालन से स्वयमेव क्षिप्रता और सघनता आ जाती है। पर हिन्दी के एकांकीकारों ने इस सिद्धान्त का सदैव पालन नहीं किया है। कार्य-संकलन तो प्रायः मिल जाता है, पर काल-संकलन और स्थल-संकलन की ओर कुछ ही दिनों से ध्यान दिया जाने लगा है। रेडियो के लिए लिखे गए नाटकों में तो स्थल-संकलन की विशेष आवश्यकता भी नहीं होती, क्योंकि फिल्म के कैमरे की भांति रेडियो का माइक्रोफोन अनायास ही दूर-दूर की यात्रा कर सकता है। हाँ, मंच के लिए लिखे गए नाटकों को यह सुविधा प्राप्त नहीं है।

एकांकी के अवयव :

एकांकी नाटक के साधारण स्वरूप का परिचय पा लेने के बाद अब उसके विविध अंगों अथवा अवयवों की भी थोड़ी-बहुत जानकारी कर लेना उपयोगी होगा। एकांकी नाटक में छोटे-बड़े रूप में वे सभी अवयव होते हैं, जो पूर्णाकार नाटक में होते हैं। हाँ, एकांकी के विशिष्ट स्वरूप के कारण उनके महत्त्व में कुछ परिवर्तन आ जाता है।

१. विषय-वस्तु :

एकांकी नाटक की विषय-वस्तु कुछ भी हो सकती है। हिन्दी में

धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक आदि प्रायः सभी विषयों पर एकांकी लिखे गए हैं। हाँ, विषय-वस्तु का चुनाव करते समय एकांकीकार इस बात का ध्यान अवश्य रखते हैं कि वह दर्शकों अथवा पाठकों की प्रचलित रुचि के अनकूल हों; उदाहरण के लिए, धार्मिक नाटक पवित्र जीवन की महता बताने के लिए लिखे गए हैं तो पौराणिक नाटक व्यक्ति के चरित्र को महान् गुणों की ओर ले जाने के लिए। ऐतिहासिक एकांकियों की रचना अधिकतर देश की एकता का चित्रण करने के लिए अथवा देश की मुक्ति के लिए सब बाधाओं से जूझने का सन्देश देने के लिए की गई है। सामाजिक एकांकियों की विषय-वस्तु बहुधा सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन, दलितों का उद्धार, नारी के अधिकारों की स्थापना, और भेदभाव मिटाने के उद्देश्य पर आधारित है। पारिवारिक एकांकी सम्मिलित परिवार में कर्तव्य और अधिकारों के सन्तुलन के लिए अथवा पति-पत्नी में हार्दिक सम्बन्धों की आवश्यकता बताने के लिए लिखे गए हैं। राजनीतिक एकांकी नागरिक जीवन के विभिन्न अंगों में मेल-भाव बढ़ाने के लिए, और चुनाव एवं प्रशासन में भ्रष्टाचार आदि बुराइयों को दूर करने के लिए लिखे गए हैं।

२. कथानक

एकांकी का कथानक विषय-वस्तु के अनुरूप होता है। लेखक इस बात का पूरा प्रयत्न करता है कि वह कथानक का चुनाव इस ढंग से करे कि उसकी विषय-वस्तु ज्यादा से ज्यादा प्रभावपूर्ण बन सके। धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों के कथानक प्रायः दर्शकों को पहले से ज्ञात होते हैं, अतः उन्हें एकांकी के उपयुक्त बनाने के लिए एकांकीकार को किसी-न-किसी प्रकार उसमें नवीनता का समावेश करना पड़ता है। ऐसा न हो, तो नाटक में कौतूहल उत्पन्न नहीं हो सकता जो एकांकी का आवश्यक गुण है। यही कारण है कि आजकल के एकांकीकार अधिकतर सामाजिक विषय-वस्तु ही चुनते हैं। जाने-पहचाने को भी एक अनोखा रूप देना एकांकी की कला के लिए आवश्यक है। यदि दर्शक अथवा पाठक-श्रोता

के मन में कथानक के प्रति जिज्ञासा और उत्सुकता न हो तो एकांकी असफल ही माना जाएगा। इसीलिए एकांकीकार बहुधा कथानक को सीधे-सपाट ढंग से प्रस्तुत नहीं करता। वह कहानी के किसी मार्मिक क्षण से एकांकी का आरम्भ करता है और पात्रों एवं कार्य-व्यापार के सहारे पूर्वाभास देकर फिर उसे चरम तक पहुँचाता है।

३. पात्र

नाटक की समस्त वस्तु पात्रों के माध्यम से ही प्रस्तुत की जाती है। नाटक का लेखक, दर्शकों अथवा पाठकों के सामने कभी नहीं आता। एकांकी के सम्बन्ध में भी यही बात लागू होती है। इसलिए एकांकीकार अपने पात्रों का चुनाव बड़ी सावधानी से करता है, ताकि कथावस्तु का कोई अंश अप्रस्तुत न रह जाय। साथ ही उसे यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि पात्र-संख्या जितनी कम हो उतना अच्छा। अनावश्यक पात्रों के लिए एकांकी में कोई स्थान नहीं होता। संख्या की सीमा के साथ-साथ एकांकीकार को समय की सीमा पर भी ध्यान देना पड़ता है। मंच पर जो भी पात्र आएगा वह नाटक में अपनी स्थिति के अनुसार कथनोपकथन में भी भाग लेगा। पर उसका कार्य समाप्त होते ही उसके प्रस्थान की व्यवस्था होनी चाहिए। मंच पर उपस्थित अनावश्यक पात्र दर्शकों का ध्यान भंग करते हैं और नाटक के प्रभाव को घटा देते हैं।

४. कथनोपकथन

कथनोपकथन अथवा संवाद पात्रों के कार्य-व्यापार के ही आवश्यक अंग हैं। नाटक की कथावस्तु उन्हीं के माध्यम से विकसित और पूर्ण होती है। अतः एकांकीकार कथनोपकथन पर बहुत ध्यान देते हैं। संवाद की भाषा और शैली यथार्थ के अनुकूल होनी चाहिए। पात्रों को सुनते समय हमें ऐसा ही लगना चाहिए मानों वास्तविक जीवन के पात्रों को सुन रहे हैं। कथनोपकथन में व्यर्थ का विस्तार देने से बचना चाहिए। बातचीत में रोचकता और उत्सुकता का समावेश भी जरूरी है। शब्दों का चुनाव

पात्रों की सामाजिक स्थिति के अनुकूल होना चाहिए। नौकर की भाषा और अफसर की भाषा एक-सी हुई तो नाटक में प्रभाव उत्पन्न नहीं हो सकता।

५. रंग-निर्देश

रंग-निर्देश अथवा अभिनय में सहायता पहुँचाने की दृष्टि से लेखक द्वारा कोष्ठकों में दिए गए संकेत भी नाटक के महत्त्वपूर्ण अवयव हैं। यद्यपि ये निर्देश मंच पर प्रस्तुत नहीं किए जाते, तथापि वे नाटक को सफलतापूर्वक समझने और प्रस्तुत करने में उपयोगी होते हैं। इनके द्वारा लेखक हमें पात्रों का परिचय, उनकी वेशभूषा, हाव-भाव, अंग-संचालन, गतिविधि आदि का परिचय देता है, मंच-सज्जा का विवरण बताता है और कार्य-व्यापार में पात्रों का योग कब और किस प्रकार हो, यह बताता है। पर रंग-निर्देश उतने ही दिए जाने चाहिए, जितने नाटक की सफलता के लिए आवश्यक हों। कभी-कभी लेखक अपना पांडित्य बघारने के लिए अथवा वर्णन-कौशल प्रदर्शित करने के लिए व्यर्थ ही लम्बे-लम्बे रंग-निर्देश लिख डालते हैं। यह प्रवृत्ति अच्छी नहीं कही जा सकती।

एकांकी के रूप-गत प्रकार

विषय-वस्तु और शैली-गत भेद की दृष्टि से तो एकांकी के अनेक प्रकार हैं जिनकी चर्चा हमें अभीष्ट नहीं है, पर एकांकी में दो प्रकार ऐसे हैं जिनमें सामान्य एकांकी से रूप-गत भिन्नता है। इन दोनों प्रकारों की संक्षिप्त जानकारी कर लेना उपयोगी होगा।

१. एक-पात्री नाटक या एकालाप

सामान्य रूप से एकांकी में एक से अधिक पात्र होते हैं जिनके कथनोपकथन और कार्य-व्यापार के सहारे नाटक की कथावस्तु विकसित और पूर्ण होती है। पर प्रयोग के तौर पर विदेश में और हिन्दी में भी कुछ ऐसे नाटक लिखे गए हैं जिनमें या तो एक ही पात्र होता है, अथवा कई पात्र होने पर भी बोलने वाला पात्र एक ही होता है। ऐसे नाटक कथा-प्रधान न

होकर अधिकतर भाव-प्रधान होते हैं, और किसी घटना का चित्रण प्रस्तुत करने की बजाय पात्र-विशेष के मनोभावों का चित्र उपस्थित करते हैं। इनको लिखना अधिक कष्ट-साध्य है और जब तक अभिनेता बहुत कुशल न हो, मंच पर इनकी सफलता में सन्देह ही रहता है। हिन्दी में ऐसे नाटकों को 'एकपात्री नाटक' (एक पात्र वाला नाटक) नाम दिया गया है। पर हम इन्हें एकालाप (मोनोलौग) कहना अधिक सही समझते हैं ; ये एकालाप रेडियो पर विशेष रूप से सफल होते हैं, क्योंकि रेडियो में दृश्य का अभाव होने के कारण पात्रों की कमी नहीं खटकती।

२. रेडियो-नाटक या ध्वनि-नाटक

यों तो रेडियो-नाटक या ध्वनि-नाटक नाटकों का एक बिलकुल पृथक् और स्वतन्त्र प्रकार है जो मंच-नाटक से नितान्त भिन्न है। इसीलिए सामान्य आलोचक एकांकी नाटक का अध्ययन करते समय रेडियो नाटक को सम्मिलित नहीं करते। पर हिन्दी में दो कारणों से एकांकी नाटकों की चर्चा में रेडियो नाटकों पर ध्यान देना सही लगता है। पहला कारण तो यह है कि यद्यपि रेडियो नाटक एकांकी नाटक से भिन्न है, फिर भी हिन्दी में ऐसे अनेक लेखक हैं जिन्होंने ऐसे नाटक लिखे हैं जो सफल एकांकी नाटक भी हैं, और सफल ध्वनि-नाटक भी; दूसरे, कुछ बातों में रेडियो नाटक और एकांकी नाटक में अद्भुत समानता है।

रेडियो-नाटक ध्वनि-नाटक है, अर्थात्, वह मंच पर खेला नहीं जाता, रेडियो पर सुना जाता है। इसी स्वरूपगत विशेषता के कारण रेडियो नाटक में अवधि की सीमा भी होती है, और पात्रों की संख्या की सीमा भी। यही नहीं, व्यर्थ के विस्तार से रेडियो नाटक भी वैसे ही दूर भागता है जैसे एकांकी नाटक और कार्य एवं काल-संकलन में भी रेडियो नाटक एकांकी नाटक का अनुसरण करता है। अनुभव से यह पाया गया है कि हमारे कानों का क्षेत्र आँखों की अपेक्षा अधिक सीमित होता है ; एक दृष्टि में एक साथ हम बहुत-सी वस्तुएँ देख सकते हैं, पर हमारे कान एक साथ

बहुत-सी ध्वनियाँ नहीं सुन सकते । इसलिए रेडियो नाटक में साधारणतः पात्रों की संख्या चार-पाँच से अधिक नहीं होती । फिर, रेडियो नाटक के श्रोता को यह सुविधा होती है कि ज्योंही कोई नाटक उसे उबाने लगे त्योंही वह अपना रेडियो सैट बन्द कर दे । अतः रेडियो नाटक में व्यर्थ के विस्तार से बचना पड़ता है, और कथनोपकथन में कौतूहल और रोचकता का समावेश करना पड़ता है । इन्हीं कारणों से रेडियो नाटक भिन्न होते हुए भी एकांकी नाटक के अत्यन्त निकट आ जाता है । हिन्दी क्षेत्र में एकांकी-मंच की अपेक्षा रेडियो-मंच अधिक सक्रिय रहा है । अतः हिन्दी में रेडियो नाटक ही सबसे अधिक लिखे जाते हैं । इसीलिए एकांकी नाटक के साथ-साथ रेडियो नाटक की भी जानकारी कर लेना उपयोगी होगा ।

——सम्पादक

बालदिवस,
दिनांक १४ नवम्बर, १९७३

उदयशंकर भट्ट

बीमार का इलाज

उदयशंकर भट्ट

[जन्म : सन् १८९८, निधन : सन् १९६६]

कवि, उपन्यासकार और नाटककार उदयशंकर भट्ट का जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा नामक स्थान में हुआ था। आपके पिता संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने अंग्रेजी में भी शिक्षा पाई थी और वे ब्रजभाषा में कविता भी लिखते थे। उन्हीं की प्रेरणा से बालक उदयशंकर साहित्य-रचना की ओर झुके। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से बी० ए० करने के बाद आपने पंजाब से शास्त्री की और कलकत्ता से काव्यतीर्थ की उपाधि प्राप्त की। इसके बाद आप बहुत दिनों तक लाहौर में अध्यापक का काम करते रहे। देश के स्वाधीन होने के बाद आप आकाशवाणी में हिन्दी परामर्शदाता नियुक्त हुए।

प्रारम्भ से ही देश के स्वाधीनता-आन्दोलन से जुड़े होने के कारण भट्टजी की साहित्यिक रचनाओं में भारतीय संस्कृति और देशप्रेम प्रमुख है। आपने अपनी कृतियों के द्वारा भारतीय इतिहास की समयानुकूल व्याख्या की है और प्राचीन चरित्रों के माध्यम से अपने युग की समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है। प्रमुख रूप से कवि होते हुए भी भट्टजी उपन्यासकार और नाटककार के रूप में भी अत्यन्त सफल थे। आपका उपन्यास 'सागर, लहरें और मनुष्य' बम्बई के मछुओं के जीवन का अत्यन्त विशद चित्र है। इसी तरह अपने नाटकों में भी भट्टजी ने तरह-तरह से अपने युग की समस्याओं को अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक नाटक भी लिखे हैं और हल्के-फुल्के विनोदपूर्ण नाटक भी।

बीमार का इलाज

'बीमार का इलाज' एक प्रहसन है। एक परिवार में अतिथि के

रूप में आया एक युवक अचानक बीमार पड़ जाता है। उसका इलाज कराने के लिए परिवार का हर सदस्य अलग-अलग मत प्रकट करता है। यह तीव्र मतभेद उनके अज्ञान और अंधविश्वासों को बड़ी मार्मिकता से प्रकट करता है। अन्त में और कोई उपाय न देखकर बेचारा बीमार युवक उठकर बाहर चल देता है। प्रहसन का अन्त डाक्टर के इस वाक्य से होता है, "मुझे इस घर में सभी बीमार मालूम होते हैं, चलो।" इससे सिद्ध हो जाता है कि लेखक का मूल उद्देश्य हमें हँसाना नहीं है, वरन् समाज से अज्ञान और अंधविश्वास को दूर करना है। हास्य तो केवल उसका साधन-मात्र है। एकांकी में पात्रों का चित्रण कुछ अतिरंजना लिये हुए है, जो प्रहसन की प्रकृति के अनुकूल ही है।

प्रश्न - बीमार का इलाज एकांकी का स्थान निर्धारण करते हुए अपने मत की पुष्टि सोदाहरण कीजिये

बीमार का इलाज

पात्र :

१. चन्द्रकांत

—आगरे का एक रईस, जो अँगरेजी सभ्यता व रहन-सहन का प्रेमी है। एकदम भारी-भरकम उम्र ४५ वर्ष।

२. कांति

—चन्द्रकांत का बड़ा पुत्र, उम्र लगभग २१-२२ वर्ष।

३. विनोद।

—कांति का समवयस्क मित्र।

४. शांति

—कांति का छोटा भाई।

५. सरस्वती

—कांति की माँ—अपने पति से सर्वथा भिन्न दुबली-पतली. पुराने विचारों वाली।

६. प्रतिमा

—कांति की बहन—एकदम मोटी, उम्र २४ वर्ष।

डा० गुप्ता, डा० नानकचन्द, वैद्य हरिचन्द, बूढ़ा नौकर सुखिया, पण्डित, पुजारी इत्यादि।

[आगरे में कांति के पिता मि० चन्द्रकांत की कोठी का एक कमरा। कमरे की सजावट एक सम्पन्न परिवार के अनुरूप है। सोफ़ा-सेट, कुर्सियाँ, तिपाई इत्यादि सभी वस्तुएँ मौजूद हैं, पर नौकर पर निर्भर रहने तथा रूढ़िवादी गृह-स्वामिनी के कारण स्वच्छता और सलीके का अभाव है। दरी पर बिछी हुई चादर काफ़ी मैली है। जिस समय का यह दृश्य दिखाया जा रहा है, उस समय सवेरे के आठ बजे हैं। कांति का मित्र विनोद विस्तर पर लेटा है। उसे अचानक रात में ज्वर हो गया, लगभग १०४ डिग्री। कड़ी काठी होने के कारण वह लापरवाही से कभी उठकर बैठ जाता है और कभी उठकर टहलने लगता है। वह अपने भीतर से यह विचार निकाल देना चाहता है कि उसे ज्वर है। फिर भी ज्वर की तेजी उसे बेचैन कर देती है और वह लेट जाता है। कुछ देर बाद कांति 'नाइट ड्रेस' में, कन्धे पर तौलिया डाले, चपलियाँ फटफटाता सीटी बजाता, बायें दरावजे से कमरे में आता है।]

कांति : हलो विनोद, अमाँ अभी तक चारपाई से चिपटे हो—आठ बज रहे हैं। क्या भूल गये, आज गाँव जाना है ? मैं तो स्वयं देर से उठा, वरना मुझे अब तक तैयार हो जाना चाहिए था। लेकिन तुमने तो कुम्भकर्ण के चाचा को भी मात कर दिया यार !

(पास जाकर) क्या बात है ? खैर तो है ?

विनोद : रात न जाने क्यों बुखार हो गया (हाथ फैलाकर) देखो !

कांति : (देह छूकर) ओह, सारी देह अंगारे की तरह दहक रही है।

विनोद : कम्बख्त बुखार कैसे बेमौके आ धमका।

कांति : यार, इस बुखार ने तो सारा मज़ा किरकिरा कर दिया। इलाहाबाद से मैं तुम्हें कितने आग्रह से छुट्टियाँ बिताने के लिए यहाँ आगरे लाया था—सोचा था, कुछ दिन यहाँ घर में आनन्द-मौज करेंगे और फिर खूब गाँव की सैर करेंगे।

विनोद : मालूम होता है, मेरे भाग्य में गाँव की सैर नहीं लिखी है। ये छुट्टियाँ बेकार हो गयीं।

कांति : गाँव का रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ है। इस दशा में तुम्हारा गाँव जाना असम्भव है। सोचता हूँ, मैं भी न जाऊँ, पर जाये बिना काम भी तो नहीं चलेगा। कल चाचाजी शायद मुकदमे के लिए बाहर चले जायँगे, न जाने कब तक लौटें! कहो तो मैं अकेला ही हो आऊँ—इफ़ यू डोण्ट माइण्ड।[1]

विनोद : नहीं, नहीं, तुम हो आओ। उन्होंने आग्रह करके बुलाया है, हो आओ। मैं ठीक हो जाऊँगा! कोई बात नहीं।

कांति : तुम्हें कोई तकलीफ़ न होगी। डाक्टर आ जाएगा। पिता-माता सभी तो हैं, मैं शाम को ही लौटने का यत्न करूँगा।

विनोद : नहीं, नहीं, मामूली बुखार है, ठीक हो जाएगा। जाओ।

[कांति के पिता चन्द्रकांत का प्रवेश]

चन्द्रकांत : (दूर से) किसको बुख़ार है, बेटा! कांति? अरे इतनी देर हो गयी, तुम अभी तक गाँव नहीं गये? धूप हो जाएगी। धूप, धूल और धुआँ इनमें तीन न सही, दो ही आदमी के प्राण निकालने को काफ़ी हैं। तिस पर घोड़े की सवारी—न कूदते बने, न सीधे बैठते। बुखार किसे हो गया बेटा?

कांति : बाबूजी, विनोद को रात बुखार हो गया। देह तवे की तरह गरम है। डाक्टर को बुलाना है। ऐसे में इसका जाना. . .

चन्द्रकांत : हैं, हैं, विनोद कैसे जा सकता है? और 'फ़ीवर'[2] जंगल में आग की तरह उद्दण्ड! अभी डाक्टर को बुलाकर दिखा देना होगा। मैंने निश्चय कर लिया है, डाक्टर भटनागर अब इस घर में क़दम नहीं रख सकता। उसने प्रतिमा का केस खराब कर दिया था। बुखार उससे उतरता ही न था। वह एकदम बकरे के थन की तरह निकम्मा सिद्ध हुआ। वैसे पूछो तो

---

१. अगर तुम बुरा न मानो तो। २. बुखार।

उस बेचारे का क़सूर भी नहीं था, दवा तो उसने एक से एक बढ़िया दी, पर इससे क्या, बुखार तो नहीं उतरा। टाइफाइड[1] को छोड़कर चाहे उसका बाप ही क्यों न हो, उसे कुछ-न-कुछ तो उतरना ही चाहिए। डाक्टर गुप्ता ने आते ही उतार दिया। अब तो गुप्ता ही मेरे फैमिली डाक्टर[2] हैं। गुप्ता को बुलाओ ! सुखिया, ओ सुखिया, जा जरा डाक्टर गुप्ता को तो बुला ला। कहना—वह कांति के मित्र हैं न, जो प्रयाग से आए हैं, उन्हें बुखार हो गया है, जरा चलकर देख लीजिए। बाबूजी ने कहा है। बेटा, मान गया मैं तो.....

कांति : डा० भटनागर में मेरा 'फ़ेथ'[3] कभी नहीं रहा बाबू जी, लेकिन डा० नानकचंद भी कम नहीं हैं। विनोद को उसे दिखाना ही ठीक होगा। न जाने उसके हाथ में कैसा जादू है। मेरा तो दिन-पर-दिन होमियोपैथी में विश्वास बढ़ता जा रहा है।

चन्द्रकांत : (कमरे में टहलते हुए) मेरे बच्चे, तुम पढ़-लिखकर भी नासमझ ही रहे। बिना अनुभव के समझदार और बच्चे में अन्तर ही क्या है। होमियोपैथी भी कोई इलाज है ! चाकलेट या मीठी गोलियाँ न दीं, होमियोपैथिक दवा दे दी ! याद रखो, बड़ों की बात गाँठ बाँध लो—जब इलाज करो, ऐलोपैथिक डाक्टर का इलाज करो। 'कड़वी भेषज के बिना मिटै न तन कौ ताप'। ये बाल धूप में सफ़ेद नहीं हुए हैं। कहते क्यों नहीं विनोद बेटा ?

विनोद : जी ! (करवट बदल लेता है।)

चन्द्रकांत : ये वैद्य-हकीम क्या जानें, हरड़-बहेड़ा और शरबत-शोरबे के पण्डित !

कांति : मैं चाहता हूँ आप इस मामले में.....

चन्द्रकांत : नहीं, यह नहीं हो सकेगा। मैं जानता हूँ विनोद का भला इसी में है।

---

१. मोतीझरा। २. घरेलू डाक्टर। ३. भरोसा।

[सुखिया का प्रवेश]

सुखिया : सरकार वो बाबू आये हैं।

चन्द्रकांत : अरे कौन बाबू, नाम भी बताएगा या यों ही. . . .

सुखिया : वही जो उस दिन रात को आये थे।

चन्द्रकांत : लो और सुनो, गधों से पाला पड़ा है।

सुखिया : वह बाबू सरकार. . . .

चन्द्रकांत : कह दे, आता हूँ। और मैंने तुझे डाक्टर के पास भेजा था। जल्दी जा।

[स्वयं भी चले जाते हैं।]

कांति : तुम घबराना मत। मैं डाक्टर नानकचन्द को बुलाकर लाऊँगा। अव्वल तो मेरा ख्याल है, शाम तक बुखार उतर जाएगा। अच्छा विनोद, देर हो रही है चलूँ। अभी मुझे 'बाथरूम'[1] भी जाना है।

विनोद : हाँ, हाँ तुम जाओ। मैंने बुखार की कभी परवाह नहीं की है, कांति। उतर जाएगा, अपने आप। शाम तक लौटने की कोशिश करना।

कांति : अवश्य, अवश्य। तुम्हारे बिना मेरा मन भी क्या लगेगा। लेकिन जाना जरूरी है। अच्छा, विश यू स्पीडी रिकवरी।[2]

[सीटी बजाता चला जाता है।]

विनोद : नमस्कार।

[करवट बदलकर लेट जाता है। कांति की माँ सरस्वती का प्रवेश]

सरस्वती : (कमरे में घुसते ही) विनोद, क्या बात है ? उठो चाय-वाय तैयार है। कुछ खाओ-पीयो। (पास जाकर) क्या बात है, खैर तो है ? कुछ तबीयत खराब है क्या ? (पलंग के पास

---

१. शौचालय। २. भगवान करे तुम जल्दी से चंगे हो जाओ।

जाकर विनोद को छूकर) हाय-हाय, देखो तो कितना बुखार है। मुँह ईंगुर-सा लाल हो गया है बिचारे का—घबराओ मत बेटा, मैं अभी वैद हरिचन्द को बुलाती हूँ। देखकर दवा दे जायेंगे—बड़े काबिल वैद हैं, विनोद। जरा कपड़ा ओढ़ लो न। (उढ़ाती है) जैसा कांति वैसा ही तू। मेरे लेखे तो दोनों एक हो। क्या सिर में कुछ दर्द है? (हाथ फेर कर) कब्ज़ी होगी। अभी ठीक हो जायगी। सुखिया, ओ सुखिया! न जाने कहाँ मर गया। इन नौकरों के मारे तो नाक में दम हो गिया है। अरे शान्ति, ओ शान्ति! (शान्ति आता है) देख तो बेटा, जा हरिचन्द वैद को बुला ला। देखकर दवा दे जायेंगे। भैया वैद हो तो ऐसा हो. . . . .

विनोद : माता जी, बाबूजी ने डाक्टर गुप्ता को बुलाया है। शायद कांति ने डाक्टर नानकचन्द के लिए कहा है।

सरस्वती : लो और सुनो, इनके मारे भी मेरा नाक में दम है। उस मरे डाक्टर को न कुछ आवे है, न जावे है। न जाने क्यों डाक्टर गुप्ता के पीछे पड़े रहे हैंगे। क्या नाम है उस मरे डाक्टर का? इन दोनों ने तो छोरी को मार ही डाला था। वह तो कहो, भला हो इन वैद जी का, बचा लिया। जा बेटा शांति, जा तो सही जल्दी।

शांति : जाऊँ हूँ माँ।

[चला जाता है]

सरस्वती : अरे प्रतिमा, ओ प्रतिमा। (दूर से ही आवाज़ आती है—हाँ माँ, क्या है?) देख जरा, मन्दिर में पण्डितजी पूजा कर रहे हैं। उनसे कहियो, जरा इधर होते जावें। और देख, उनसे कहियो मार्जन का जल लेते आवें, विनोद भैया बीमार हैं। मैंने घर में ही मन्दिर बनवाया है बेटा!

विनोद : (उत्सुकता से करवटें बदलकर) पण्डितजी का क्या होगा यहाँ माँ?

सरस्वती : बेटा, जरा मार्जन कर देंगे। अपने वो पण्डितजी रोज पूजा करने आवें हैं। मार्जन कर देंगे। सारी अला-बला दूर हो जायगी। तुम पढ़े-लिखे लोग मानो या न मानो, पर मैं तो मानूँ हूँगी भैया! पिछले दिनों प्रतिमा बीमार थी। समझ लो, पण्डितजी के मार्जन से अच्छी हुई। मैंने कथा में एक बार सुना था——बुखार-उखार तो नाम के हैं, असली तो यह भूत ही हैं जो बुखार बनकर आ जाय हैंगे। सिर दबा दूँ क्या बेटा? जैसे कांति वैसे तुम। तब तक न हो तो थोड़ा-सा दूध पी लो। अरी मिसरानी, ओ मिसरानी! (दूर से आवाज़— आयी बहूजी।) अरी देख, थोड़ा दूध तो गरम कर लाइयो।

विनोद : दूध तो मैं नहीं पिऊँगा माता जी!

सरस्वती : (चिल्लाकर) अच्छा रहने दे। (विनोद से) क्या हर्ज है, थोड़ी देर बाद सही। जरा ओढ़ लो, मैं अभी आयी। (जैसे ही जाने लगती है वैसे ही मार्जन का जल, दूर्वा लेकर पण्डित जी कमरे में आते हैं।) देखो पण्डितजी, तुम्हारी पूजा से प्रतिमा जी उठी थी। याद है न? ये मेरे कांति का मित्र है। दोनों एक साथ पढ़े हैं। तुम्हें नहीं मालूम आजकल वह आया है न। चाचा ने बुलाया है, आज गाँव जा रिया है। विनोद भी जा रिया था, पर इस बिचारे को बुखार आ गया। जरा मंत्र पढ़कर मार्जन तो कर दो।

पण्डितजी : क्यों नहीं, बहूजी, मन्त्र का बड़ा प्रभाव है। पुराने समयों में दवा-दारू कौन करे था। बस, मन्त्राभिसिक्त जल से मार्जन किया कि बीमारी गई। तुम तो बीमारी की कहो हो, यहाँ तो मरे जी उठते थे मरे, जिनके जीने का कोई सवाल ही नहीं उठे था (आँख मटकाकर) हाँ, ऐसा था मन्त्र का प्रभाव।

सरस्वती : सच कहो हो पण्डितजी, जरा कर तो दो मार्जन। वैसे मैंने अपने उन वैदजी को भी बुलाया है। शान्ति गया है बुलाने।

पण्डितजी : तभी, तभी मैं भी कहूँ आज शान्ति बाबू नहीं दिखाई दिये।

ठीक है, एक शत्रु पर जब दो पिल पड़ें तो वह कैसे बचकर जायगा। अच्छा, ये कान्ति बाबू के दोस्त हैं। अच्छा है भैया, खुश रहो, खूब पढ़ो-लिखो, धर्म में श्रद्धा रखो—हम तो ये कहें हैं। क्यों बहूजी ?

सरस्वती : हाँ और क्या, पर आजकल के ये पढ़े-लिखे कुछ मानें तब न ! तुम्हारे उन्हींको देख लो, कुछ दिनों से डाक्टरों के चक्कर में पड़े हैं। मैं कहूँ हूँ, अपने बुजुर्गों की दवाइयाँ क्यों छोड़ी जायँ ? जब ये डाक्टर नहीं थे तब क्या कोई अच्छा नहीं होवे था ? सभी ठीक होवें थे। अब न जाने कैसा जमाना आ रिया है।

पण्डितजी : जमाना बड़ा खराब है बहूजी ! देवता, ब्राह्मण और गौ पर तो जैसे श्रद्धा ही नहीं रही।

सरस्वती : अच्छा पण्डितजी, मार्जन कर दो, मैं अभी आई (चली जाती है। पण्डितजी मंत्र पढ़कर विनोद के ऊपर छिड़कते हैं। इसी समय डाक्टर को लेकर चन्द्रकांत प्रवेश करते हैं।)

चन्द्रकांत : हैं हैं, अरे क्या हो रहा है ? (पास जाकर) बस करो, ब्राह्मण देवता, बस करो। (जोर से) अरे, तुम क्या समझती हो इसे भूत है ? रहने दो। न जाने इन औरतों को कब बुद्धि आएगी ! अरे, डाक्टर गुप्ता, आप इधर बैठिए न।

पण्डितजी : बस, थोड़ा ही मार्जन रह गया है, बाबूजी।

[मार्जन करता है।]

डा० गुप्ता : महाराज, क्यों मारना चाहते हो बीमार को। निमोनिया[1] हो जायगा, निमोनिया। (पण्डित डाक्टर के कहने पर भी मार्जन किये ही जाता है) अटर न्यूसेन्स,[2] मिस्टर चन्द्रकांत !

चन्द्रकांत : (कड़क कर) बस रहने दो। सुनते नहीं, डाक्टर गुप्ता क्या कह रहे हैं ? निमोनिया हो जायगा।

---

१. सन्निपात। २. बिलकुल बकवास।

पण्डितजी : जैसी आपकी इच्छा। मेरा तो विचार है, विनोद बाबू का इतने से ही बुखार उतर गया होगा।

[चला जाता है।]

डा० गुप्ता : मन्त्रों से बीमारी अच्छी हो जाती तो हम क्या भाड़ झोंकने को इतना पढ़ते ! न जाने देश का यह अज्ञान कब दूर होगा ! (डाक्टर खाट के पास खड़ा होकर विनोद को देखता है।) बुखार तेज है। जीभ दिखाइए। पेट दिखाइए (थर्मामीटर लगाकर नाड़ी की गति गिनता है। फिर थर्मामीटर देखकर) १०४ डिग्री। कोई बात नहीं, ठीक हो जायगा। दवा लिखे देता हूँ, डिस्पेन्सरी[1] से मँगा लीजियेगा। दो-दो घण्टे बाद। पीने को केवल दूध। यू विल बी आल राइट विदिन टू ऑर थ्री डेज़।[2]

चन्द्रकांत : डाक्टर गुप्ता, ये कान्ति के दोस्त हैं। बिचारे उसके साथ सैर को आये थे।

डा० गुप्ता : ठीक हो जायँगे। बेचैनी मालूम हो, बुख़ार न उतरे तो बरफ़ रखियेगा सिर पर।

चन्द्रकांत : ठीक है। (विनोद से) घबराने की कोई बात नहीं। ठीक हो जाओगे, मामूली बुखार है। मैं अभी दवा लाता हूँ।

डा० गुप्ता : मैं शाम को भी आकर देख लूँगा। अच्छा मिस्टर चन्द्रकान्त ! (एक तरफ़ से दोनों चले जाते हैं। दूसरी तरफ़ से सरस्वती आती है।)

सरस्वती : क्या हुआ, पण्डितजी चले गए ? मार्जन कर गये ?

विनोद : (चुपचाप पड़ा रहता है।)

सरस्वती : (देह छूकर) अब तो बुखार कम है। देखा मन्त्र का प्रभाव, मार्जन करते ही फरक पड़ गया। (वहीं से चिल्लाकर) प्रतिमा, ओ प्रतिमा, सुनियो री जरा।

प्रतिमा : (वहीं से चिल्लाती हुई) क्या है ?

---

१. औषधालय। २. आप दो-तीन दिन में ठीक हो जायेंगे।

सरस्वती : देख तो पण्डित जी गये क्या। बुखार तो कुछ उतरा दिखाई दे है। उन्हें कह जरा और थोड़ी देर मार्जन कर दें। (प्रतिमा जाती है।)

विनोद : नहीं, रहने दीजिये। वे मार्जन कर गये हैं।

सरस्वती : क्या हर्ज है, अपने घर के ही पण्डित जी तो हैं। आधी रात को बुलाओ तो आधी रात को आवें। मखौल है क्या! बीस रुपया महीना, तीज-त्यौहार पर आटा-सीधा अलग। तीस तो पड़ी जाय हैंगे। ऊपर से भी आमदनी हो जाय हैगी।

[प्रतिमा आती है।]

प्रतिमा : पण्डितजी तो गये, अम्मा।

विनोद : माताजी, मार्जन रहने दीजिये। काफ़ी हो गया।

[चुप हो जाता है। शान्ति के साथ वैद्य हरिचन्द आते हैं।]

सरस्वती : लो, वैदजी आ गये। आओ वैद जी।

हरिचन्द : क्या बात है बहूजी? सबेरे-ही-सबेरे शान्ति जो पहुँचा तो मैं डर गया। कायदे से किसी आदमी को देख कर वैद्य को खुश होना चाहिए, परन्तु मेरी आदत और ही है। मैं तो चाहता हूँ अपनी जान-पहचान के लोग सदा प्रसन्न रहें। हाँ, क्या बात है?

[संकेत से पूछता है।]

सरस्वती : ये कान्ति के साथ पढ़े हैं वैद जी। छुट्टियों में उसी के संग सैर को आया, सो बिचारा बीमार पड़ गया। जरा देखो तो—
(जैसे ही वैद्य नाड़ी देखने को बढ़ता है वैसे ही विनोद बोल उठता है।)

विनोद : डाक्टर गुप्ता भी देख गये हैं, माता जी।

हरिचन्द : फिर मेरी क्या आवश्यकता है, मेरा काम ही क्या है? (एकदम दूर जा खड़ा होता है) मैं ऐसे रोगियों का इलाज नहीं करता। उसी डाक्टर का इलाज करो। और मैं तो राजा

भूपेन्द्रसिंह के यहाँ जा रहा था। सोचा, बाबूजी ने बुलाया है तो जाना ही चाहिए।

[लौटने लगता है।]

सरस्वती : वैद जी, उनकी भली चलाई। आने दो डाक्टर गुप्ता को। इलाज तो तुम जानो, तुम्हारा ही होगा। मैं क्या कांति के मित्र को बीमार होने दूँगी ? नहीं, तुम्हें ही इलाज करना होगा। तुम्हारी ही दवा दी जायगी। चलो देखो। उन मरों ने प्रतिमा को तो मार ही दिया था। तुम्हीं ने तो बचाया। वाह, यह कैसे हो सके हैगा ? इस घर में डाक्टरी नहीं चलेगी।

हरिचन्द : (पास जाकर विनोद को देखते हुए) हाँ, सोच लो। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो दवा देने के लिए भागते फिरें। मैं अच्छी तरह जानता हूँ, बाबू चन्द्रकान्त डाक्टरों के चक्कर में पड़ गये हैं, जो अंग्रेजी दवाइयाँ देकर लोगों को मार देते हैं। (व्यंग्य से हँस कर) ये डाक्टर भी अजीब हैं। देशी बीमारी और अंग्रेजी दवाई ! न देश, न काल ! (विनोद को देखकर) पेट खराब है। काढ़ा देना होगा। एक गोली दूँगा, काढ़े के साथ दे देना। बुखार पचेगा और ठीक हो जायगा।

सरस्वती : (उछलकर) मैं कह नहीं रही थी कब्ज़ी बुखार है। कहो विनोद, क्या कहा था ? घोड़ी नहीं चढ़े तो क्या बरात भी नहीं देखी ! बहुत-सी बीमारी का इलाज तो मैं खुद ही कर लूँ हूँगी।

हरिचन्द : बीमारी पहचानने में कर तो ले कोई मेरा मुकाबला। बड़े-बड़े सिविल सर्जन मुझे बुलाते हैं। अभी उस दिन राजा साहब के यहाँ सारे शहर के डाक्टर इकट्ठे हुए, किसी की समझ में नहीं आ रहा था क्या बीमारी है। मुझे बुलाया गया, देखते ही मैंने झट से कह दिया यह बीमारी है।

सरस्वती : (वैद्य की तरफ विश्वास से देखकर) फिर मान गये ?

हरिचन्द : मानते न तो क्या करते ? वह सिक्का बैठा कि शहर-भर में धूम मच गयी। अब रोज जाता हूँ।

सरस्वती : आराम आ गया फिर ? भला क्यों न आराम आता ! हमारे वैद जी क्या कोई कम हैं ?

हरिचन्द : अभी देर लगेगी। पुराना रोग है। ठीक हो जायगा।

सरस्वती : अरे, तो आराम नहीं आया ? भला कौन बीमार है ?

हरिचन्द : उनकी बड़ी लड़की।

सरस्वती : (साश्चर्य) वह गप्पो क्या वैद जी ? बड़ी अच्छी लड़की है बिचारी। राम करे अच्छी हो जाय।

हरिचन्द : हाँ, अच्छा चला। काढ़ा और गोली भेज दूँगा। पहले बुखार पचेगा, फिर उतरेगा। उस दिन राजा साहब बोले—वैद्यजी, हमने आपको अपने परिवार का चिकित्सक बना लिया है।

सरस्वती : सो तो है ही। तुम्हें क्या कमी है ! मैं उनसे यही तो कहूँ हूँ कि हमें तो वैद जी की दवा लगे है। पर न जाने.....

हरिचन्द : सस्ती दवा, थोड़ी फीस, देश काल के अनुसार। और मैं क्या डाक्टरी नहीं जानता ! मैंने भी तो मेटीरिया मेडिको, सर्जरी पढ़ी है।

सरस्वती : सो तो है ही वैद जी।

[सरस्वती वैद्य के साथ एक द्वार से निकल जाती है। दूसरे से चन्द्रकांत सुखिया के साथ दवा लेकर आते हैं।]

चन्द्रकांत : लो बेटा विनोद, एक खुराक पी लो। अभी ठीक हो जाओगे।

[विनोद को उठाकर दवा पिलाता है।]

विनोद : अभी वैद हरिचन्द भी देखने आये थे।

चन्द्रकांत : (चौंककर) आये थे ? वह मूर्ख वैद्य ! वह क्या जाने इलाज करना। इन औरतों के मारे नाक में दम है साहब। दवा तो नहीं पी न ? अच्छा दो-दो घण्टे बाद दवा लेते रहना। पीने को दूध, बस और कुछ नहीं। मैं काम से जा रहा हूँ। (जाते-

जाते सुखिया से) देख , तू यहाँ बैठ। बाबू की देख-भाल करना, भला।

सुखिया : जी सरकार।

[चन्द्रकांत चला जाता है]

सुखिया : बाबू, मैं तो झाड़-फूंक में विश्वास करता हूँ। हाथ फेरते ही बुखार उतर जावेगा। यह ओझा से पानी लाया हूँ। दो घण्टे में बुखार क्या उसका नाम भी न रहेगा। मैंने तो छोटे बाबू से सबेरे ही कहा था--कहो तो ओझा को बुलाऊँ, पर वे न माने। कहा, तू पागल है सुखिया। मैं चुप हो रहा। क्या करता, गरीब आदमी ठहरा। अभी दो घण्टे में बुखार का नाम भी न रहेगा बाबू !

विनोद : अरे कहीं बुखार भी झाड़-फूंक से गया है ? सुखिया ! मैं तो गाँव का रहने वाला हूँ। मैंने तो कहीं नहीं देखा कि बुखार झाड़-फूंक से उतरता है। जरा पानी तो दो।

सुखिया : (दरी पर बैठ कर तमाखू खाता हुआ) शर्त बद लो शर्त ! और वह ओझा तो वैदगी भी जाने है। हमारे यहाँ तो कोई भी और कहीं नहीं जाय हैगा। वैसे तुम्हारी मर्जी। पानी पियोगे ? देता हूँ। यही पानी पी लो नं। किसी को मालूम भी न होगा। न दवा, न दारू।

[पानी देता है]

विनोद : (पानी पीकर) नहीं सुखिया, ओझा की कोई आवश्यकता नहीं है। कान्ति गया क्या ?

सुखिया : गये होंगे। घोड़ी तो दो दिन से खड़ी थी। अब तो पहुँचने वाले होंगे।

[इसी समय सरस्वती कटोरे में काढ़ा और दूसरे हाथ में दवा की गोली लेकर आती है।]

सरस्वती : लो बेटा विनोद, जरा जी कड़ा करके पी तो लो। ऊपर से

यह गोली खा लो । नहीं-नहीं, पहले गोली फिर काढ़ा । मैं भी कितनी भुलक्कड़ हूँ !

विनोद : दवा तो अभी मैं पी चुका हूँ, माता जी । बाबूजी पिला गये हैं ।

सरस्वती : क्या कहा, दवा दे गये हैं ? कोई हर्ज नहीं, फायदा तुम्हें इसी दवा से होगा । यह काढ़ा ऐसा-वैसा नहीं है । एकदम लाभ होगा और मेरा तो तजुर्बा है । प्रतिमा मर रही थी, इन्हीं वैदजी ने उसे जिलाया । लो, पी तो लो ।

[कटोरा देती है । विनोद चुपचाप काढ़ा पीने लगता है । इसी समय चन्द्रकांत लौट आते हैं । विनोद को दवा पीते देखकर--]

चन्द्रकांत : यह क्या हो रहा है विनोद ?

सरस्वती : दवा दे रही हूँ और क्या ?

चन्द्रकांत : तुम पागल हो गयी हो ? विनोद डाक्टर गुप्ता की दवा पी चुका है । उसे और दवा देना. . . . .

सरस्वती : सुनो, मैं यह नहीं मानती । मैं डॉक्टर की दवा और डॉक्टर दोनों को व्यर्थ समझती हूँ । मालूम नहीं है, प्रतिमा को इस डाक्टर ने मार ही डाला था, वह तो कहो वैद हरिचन्द ने बचा लिया ।

चन्द्रकांत : तुम मूर्ख हो । कहीं डाक्टर मूर्ख होता है ? मूर्ख हैं ये वैद्य जो कुछ नहीं जानते । प्रतिमा को डॉक्टर गुप्ता से लाभ हुआ था ।

सरस्वती : बिल्कुल गलत । दवा तो मैं देती थी । मुझे मालूम है, किससे लाभ हुआ उसे ।

चन्द्रकांत : विनोद, दवा मत पियो । वैद्यों की दवा पीना मृत्यु को बुलाना है ।

सरस्वती : बेटा, यह काढ़ा पीना बहुत आवश्यक है । इसे बिना पिये तुम्हें लाभ ही न होगा । इन्हें कहने दो । ये ऐसी ही कहते रहे हैं । यदि वैदजी की दवा न होती तो प्रतिमा कभी की मर गयी होती ।

चन्द्रकांत : (कटोरी विनोद के हाथ से लेकर) इसे रहने दो। न जाने संसार से मूर्खता कब जायगी ? लो इसे पियो।

सरस्वती : नहीं, यह नहीं हो सके हैगा। तुम्हें मालूम है वैद हरिचन्द की दवा से प्रतिमा मरते-मरते बची है। पराया लड़का है बिचारा, कान्ति के साथ सैर को आया है। डाक्टरों के चक्कर में पड़ा और बस। मैं हा-हा खाती हूँ इसे डाक्टर की दवा मत दो। रहने दो विनोद, क्या मैं इस घर की कोई भी नहीं हूँ ?

चन्द्रकांत : क्या तुम यह नहीं मानतीं कि औरतों में बुद्धि थोड़ी होती है ? मेरा कहा मानो और विनोद को डॉक्टर की दवा पीने दो। अच्छा हो जायगा—जल्दी अच्छा हो जायगा, सरस्वती।

सरस्वती : देखो जी, तुम क्या नाम है मुझे ही सदा दबाते रहते हो। इस घर में कोई मेरी भी सुने हैगा ! (एकदम रोकर) दो और गाली दो, मार लो। (काढ़ा-गोली जमीन पर रखकर रोने लगती है। आँचल से आँसू पोंछती हुई) जैसे मैं इस घर की कोई भी नहीं हूँगी। ई ई ई ई न अच्छी बात सुने हैंगे न समझ की बात ई ई ई ई ! (रोती है।)

चन्द्रकांत : (हैरान रहकर) अरे तो भागवान, मैंने तुझे गाली कब दी। मैंने तो यही कहा है कि डॉक्टर की दवा से विनोद अच्छा हो जायगा।

सरस्वती : (रोते हुए) ई ई ई....और गाली किसे कहे हैंगे। मुझे मरी मौत भी तो नहीं आवे है। एक दफे मर जाऊँ तो रोज-रोज का झंझट तो जाय। (रोकर) वैद हरिचन्द ने जहर तो नहीं दिया है, काढ़ा और गोली ही तो दी है, फिर न जाने इतनी जिद क्यों है ? मैं क्या कोई इसकी दुश्मन हूँ ? (हिचकी भरकर) अच्छा करो तो बुरा होय है ? (अकड़कर) मैं साफ कह दूँ हूँ, विनोद पियेगा तो काढ़ा ही, डॉक्टर की दवा हरगिज नहीं पियेगा।

चन्द्रकांत : मैं कहता हूँ विनोद डाक्टर की दवा पियेगा ।

सरस्वती : मैं कहती हूँ विनोद वैद की दवा पियेगा ।

चन्द्रकांत : तुम मूर्ख हो, तुम्हें कोई कहाँ तक समझावे । मैंने दुनिया देखी है । मैं जानता हूँ आजकल किसकी दवा से फायदा होता है । देखो, जिद न करो ।

सरस्वती : (अड़ती हुई) देखो मेरी सुनो, घर के मामले में तुम्हें बोलने का कोई अधिकार नहीं है । विनोद अगर दवा पियेगा तो वैद जी की । अभी तो कह गये हैं कि विनोद का बुखार ठीक हो जायगा । समझे कि नहीं ।

चन्द्रकांत : नहीं, नहीं, हरगिज नहीं । विनोद दवा पियेंगा तो डाक्टर की, नहीं तो कोई दवा नहीं पियेगा ।

विनोद : इससे तो अच्छा यह है कि मैं कोई दवा न पीऊँ ।

सरस्वती : यह कैसे हो सके हैगा भैया, मैं मर जाऊँ । इससे तो अच्छा है भगवान मुझे उठा लें । अब इस घर में मेरी कोई जरूरत नहीं है । हाय राम, दूसरों के सामने भी मेरा अपमान हो रिया है और तुम देख रहे होगे (क्रोध से) मैं तो अपना सिर फोड़ लूंगी । इस घर में अब मेरी जरूरत ही क्या है ? ले पी विनोद ।

चन्द्रकांत : (लाचारी से) अच्छा भाई, काढ़ा पी लो, मुझे क्या । अजब परेशानी में जान है इन औरतों के मारे ! तुम लोग कभी कोई नयी बात नहीं सीखोगी । कभी दूसरे का कहना न मानोगी । कभी भला-बुरा न सोचोगी । (अकड़कर) डाक्टर मेरा चाचा तो नहीं लगता ! लेकिन याद रखो विनोद, जल्दी अच्छे होने के लिए यह आवश्यक है कि तुम डाक्टर की दवा पियो । अच्छा चलो, विनोद के ऊपर ही फैसला रहा । क्यों विनोद ?

सरस्वती : देखा, लगे उसे बहकाने । वह क्या जाने बेचारा । मैं कहूँ हूँ एक वैद की दवा देकर तो देखो । लो बेटा, पियो तो सही काढ़ा ।

चन्द्रकांत : और मैं दुश्मन हूँ ?

सरस्वती : तुम क्यों दुश्मन होते ! राम करे इसके दुश्मन रहें ही न ! पियो तो सही ।

विनोद : (दोनों हाथ जोड़कर) यदि आप मुझे मेरे हाल पर छोड़ दें तो मैं शाम तक ठीक हो जाऊँगा ।

दोनों : (चिल्लाकर) यह कैसे हो सकता है ? दवा तो तुम जानो पीनी ही पड़ेगी ।

विनोद : नहीं, नहीं, आप क्षमा करें बाबूजी, मैं अंग्रेज़ी दवा पीने का आदी नहीं हूँ ।

सरस्वती : (चिल्लाकर) मैंने कहा था न कि विनोद को वैद जी की दवा से ही आराम होगा ।

विनोद : नहीं, मैं वैद्य की दवा भी न पीऊँगा । मैं वैसे ही ठीक हो जाऊँगा, माताजी । (उठकर चलने को तैयार होता है इसी समय कान्ति डाक्टर नानकचन्द के साथ प्रवेश करता है ।)

कांति : आइए डाक्टर साहब, मैंने कहा--(पिता को देखकर) विनोद को जरा डाक्टर साहब को भी दिखा दूँ । (विनोद की तरफ देखकर) अरे विनोद, तुम तो जा रहे हो । क्या बात है ? सुनो, देखो, डाक्टर साहब आये हैं—होमियोपैथ हैं । सुनो विनोद ।

विनोद : मेरा बुख़ार घूमने से उतरता है, कान्ति । मैं घूमने जा रहा हूँ ।

[जाता है ।]

डॉक्टर : ही इज़ सफ़रिंग परहैप्स फ्राम किंग्स डिज़ीज़[1]—इनको नींद में घूमने की बीमारी मालूम होती है ।

कान्ति : (चिल्लाकर) बिचारा विनोद ! मैं जाता हूँ । शायद वह अपने आपे में नहीं है ।

चन्द्रकांत : लेकिन डाक्टर ने तो बुख़ार की दवा दी है ।

सरस्वती : और वैद्यजी ने अपच का काढ़ा, डाक्टर साहब ।

---

१. इन्हें शायद राजरोग है ।

सुखिया : फायदा तो मेरे लाये पानी से हुआ है, मैं ओझा से फुकवा कर पानी लाया था ।

डाक्टर : मिस्टर कान्ति, मुझे इस घर में सभी बीमार मालूम होते हैं, चलो ।

सब : (चिल्लाकर) ओ : डाक्टर !

(पर्दा गिरता है ।)

डा० रामकुमार वर्मा

कौमुदी महोत्सव

डा० रामकुमार वर्मा

[जन्म : सन् १९०५]

हिन्दी एकांकी के जन्मदाताओं में डा० रामकुमार वर्मा का विशेष स्थान है। आपका जन्म मध्य प्रदेश के सागर ज़िले में हुआ। प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० करने के बाद आप वहीं हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हो गए, और धीरे-धीरे उन्नति करते हुए आप वहाँ के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष भी बने। अपने काम से अवकाश प्राप्त करके अब आप इलाहाबाद में ही साहित्य-चर्चा में जीवन बिताते हैं। आपने कुछ दिनों तक मध्य प्रदेश के शिक्षा-निदेशक के पद पर भी कार्य किया है और मास्को में हिन्दी के शिक्षक भी रहे हैं।

रामकुमार वर्मा प्रवृत्ति से कवि हैं। आपकी रोमानी और छायावादी कविताएँ किसी समय बड़े चाव से पढ़ी और सुनी जाती थीं। इसके अतिरिक्त आपने समीक्षा के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। पर आपको सबसे अधिक सफलता एकांकी के क्षेत्र में ही मिली। आप अब तक लगभग एक सौ एकांकी लिख चुके हैं जो कई संग्रहों में प्रकाशित हुए हैं। इनमें से अधिकांश रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेले भी जा चुके हैं और अनेक आकाशवाणी से प्रसारित भी हो चुके हैं।

एकांकी के जन्मदाता होने के कारण वर्माजी के एकांकी नाटक परवर्ती लेखकों के लिए उदाहरण का काम करते रहे हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय के उत्सवों में प्रतिवर्ष आपके नाटक खेले जाते थे, इसलिए वर्माजी को नाटक लिखने की प्रेरणा का कभी अभाव नहीं रहा। कुछ समीक्षकों ने आपको 'एकांकी-सम्राट' की पदवी भी दी है।

वैसे तो वर्माजी के नाटकों में सभी तरह के विषय पाये जाते हैं, पर आपने सबसे अधिक ध्यान भारतीय इतिहास और संस्कृति पर दिया है। हम कह सकते हैं कि आपने एक प्रकार से प्रसाद जी के काम को आगे बढ़ाया है और अपने इतिहास से ऐसे पात्र लेकर नाटक-रचना की है जो हमें वीरता, दया, करुणा, साहस, त्याग आदि गुणों की शिक्षा देते हैं।

कौमुदी महोत्सव

'कौमुदी महोत्सव' वर्माजी के ऐतिहासिक एकांकियों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसकी एक लम्बी भूमिका में वर्माजी ने स्वयं इसके महत्त्व का परिचय कराया है। उन्होंने बताया है कि यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य और उसके प्रधानमंत्री चाणक्य की टक्कर के प्रसंग पर संस्कृत, बँगला और हिन्दी में पहले भी नाटक लिखे जा चुके हैं, पर किसी भी नाटक में चन्द्रगुप्त के चरित्र के साथ न्याय नहीं हो सका। सभी नाटककारों ने चन्द्रगुप्त को चाणक्य के सामने दब्बू और भीरु चित्रित किया है। वर्माजी को चन्द्रगुप्त का यह रूप पसन्द नहीं आया, क्योंकि चन्द्रगुप्त अत्यन्त वीर और साहसी था और उसने अपने पराक्रम के बल पर एक नए साम्राज्य की स्थापना की थी। ऐसे प्रतापी चरित्र को दब्बू और कायर चित्रित करना उन्हें उचित नहीं लगा। इसीलिए उन्होंने 'कौमुदी महोत्सव' की रचना की। इसमें चाणक्य की सूक्ष्म-दर्शिता और बुद्धिमत्ता को घटाए बिना ही चन्द्रगुप्त की वीरता की स्थापना की गई है। इस दृष्टि से यह एकांकी हमारे इतिहास के एक महान् वीर को एक नए रूप में प्रस्तुत करता है।

कौमुदी महोत्सव

पात्र :

१. सम्राट् चन्द्रगुप्त
—कुसुमपुर के मौर्य सम्राट्

२. चाणक्य
—सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामन्त्री

.३ वसुगुप्त
—कुसुमपुर के समाहर्त्ता

४. यशोवर्मन
—कुसुमपुर के अन्तपाल

५. पुष्पदन्त
—कुसुमपुर के कार्यान्तिक

६. अलका
—राजनर्त्तकी

सैनिक, दौवारिक

समय :
—ईस्वी पूर्व ३२२

[बाहर चारों ओर कोलाहल हो रहा है। बीच-बीच में तुरही का नाद हो उठता है। शंख और घण्टों की आवाज भी सुन पड़ती है। धीरे-धीरे यह ध्वनि क्षीण होती है।

राज-कक्ष में समाहर्त्ता वसुगुप्त और अन्तपाल यशोवर्मन बातें कर रहे हैं।]

वसुगुप्त : आज कुसुमपुर की जनता का कोलाहल कितना उभरा हुआ है ! ढाल के मध्य भाग की भाँति वह किसी भी तलवार का वार रोकने के लिए आगे बढ़ आया है। कुसुमपुर का उत्साह एक ढाल की तरह है जिस पर विद्रोह की तलवार भी कुंठित हो जायेगी। अब तो अन्तपाल यशोवर्मन का सन्देह दूर हो गया होगा।

यशोवर्मन : वसुगुप्त ! सन्देह पानी का बुलबुला नहीं है जो एक क्षण में भंग हो जाता है। सन्देह तो धूमकेतु की रेखा है जो आकाश में एक छोर से दूसरे छोर तक फैली रहती है, और धूमकेतु जानते हो किस बात का प्रतीक है ? भय का, आशंका का, अमंगल का !

वसुगुप्त : किन्तु भय, आशंका और अमंगल तो नहीं हैं। नन्दवंश का विनाश होते ही ये ढाक के तीन पात की तरह अलग हो गए।

यशोवर्मन : अलग-अलग भले ही हो गए हों, पर हैं तो !

वसुगुप्त : अब रहे भी नहीं। जब शक, यवन, पारस और वाह्लीक राजाओं के साथ महाराज चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में प्रवेश किया तो सारी प्रजा ने उनका स्वागत किया। क्या इस कोलाहल में तुमने प्रजाजनों के उत्साह की सरिता उमड़ती नहीं देखी ?

यशोवर्मन : देखी, किन्तु इस उत्साह के बीच ऐसे कंठ भी हो सकते हैं जिनमें व्यंग्य और परिहास की ध्वनि हो। नन्द के प्रति राज-

भक्ति अभी निष्प्राण नहीं हुई है। हरी घास में कुश और कंटक भी होंगे।

वसुगुप्त : तो वे निर्मूल कर दिये जायेंगे।

यशोवर्मन : किन्तु आपको क्या ज्ञात नहीं है कि महाराज नन्द के मंत्री राक्षस की नीति छद्मवेश धारण कर चलती है? नन्द नहीं हैं, किन्तु नन्द के मंत्री तो हैं जो छिपकर कुसुमपुर से बाहर चले गये हैं!

वसुगुप्त : तो हमारे पास भी पहचाननेवाली आँखें हैं। (जनरव फिर बढ़ता है।) देखा, यह जनरव बढ़ रहा है! वातायन बन्द कर दो।

यशोवर्मन : हाँ, बात ही नहीं सुन पड़ती। (वातायन बन्द करते हैं।)

वसुगुप्त : तो सम्राट् चन्द्रगुप्त ने जब कुसुमपुर में प्रवेश किया तो पहला कार्य तो यहाँ की शासन-व्यवस्था ठीक करना है।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य के मस्तिष्क में राजनीति के न जाने कितने व्यूह प्रतिदिन बनकर बिगड़ते हैं, उनसे अधिक राजनीति की व्यवस्था कौन कर सकता है?

वसुगुप्त : तो क्या सम्राट् चन्द्रगुप्त का मस्तिष्क केवल बाहुबल का केन्द्र ही है?

यशोवर्मन : हाँ, आचार्य चाणक्य की नीति और सम्राट् चन्द्रगुप्त के बाहुबल ने ही नन्दवंश को समाप्त किया है। नन्दवंश की विलासिता-संध्या सम्राट् चन्द्रगुप्त की यश-चन्द्रिका के समक्ष अधिक देर तक नहीं रुक सकी।

[नेपथ्य में 'सम्राट् चन्द्रगुप्त की जय' का घोष]

वसुगुप्त : (उत्सुकता से) सम्राट् आ गए? तो क्या जनता का इतना कोलाहल उन्हीं के स्वागत के लिए था? वातायन खोलकर देखो, यशोवर्मन!

यशोवर्मन : मैं देखता हूँ। (यातायन खोलते हैं। जनरव फिर तीव्रता

से सुनाई पड़ता है।) हाँ, जनता उत्सुकता से पुष्पों के हार उछाल रही है ! महाराज ने सिंह-द्वार से अन्तरंग प्रकोष्ठ में प्रवेश कर लिया है; उनका वेश इस समय दर्शनीय है। विस्तीर्ण ललाट, उठी हुई नासिका और बड़े-बड़े अरुण नेत्र। वे नागरिकों से कुछ कह भी रहे हैं। कहते समय उनकी वाणी में वीरत्व उसी प्रकार गुंजायमान होता है जैसे दिशाओं में दूर से आती हुई प्रतिध्वनि सिमट कर अंतिम स्वर में गूंजती है। उनकी भौंहों में स्वाभाविक रूप से बल पड़े हुए हैं जैसे दृष्टि के ऊपर आकांक्षाएँ वक्र होकर दुहरी हो गई हैं। घुंघराले मुक्त केशों पर मुकुट है जिसकी कलँगी सिर के हिलने मात्र से लज्जाशील नारी की दृष्टि की भाँति झुक जाती है। भुज-दण्डों में शक्ति का संचय है, ज्ञात होता है, जैसे वे राज्य के मेरु-दण्ड हैं। सैनिकों जैसा वेश, हृदय पर मोतियों की माला, कमर में मखमली म्यान के भीतर खड्ग ! बड़ा उत्साह-पूर्ण वेश-विन्यास है उनका !

वसुगुप्त : (प्रसन्नता से) सचमुच, सम्राट् वीर-रस के प्रतीक हैं ! वह दौवारिक आया।

दौवारिक : महाराज की जय ! सम्राट् का आगमन हो रहा है।

वसुगुप्त : हम लोग भी उनके स्वागत के लिए उत्सुक हैं। तुम जाओ बाहरी द्वार पर सम्राट् पर पुष्प-वर्षा हो।

दौवारिक : जो आज्ञा। (प्रस्थान)

यशोवर्मन : सम्राट् ने तक्षशिला में ग्रीक सैन्य-संचालन का जो कौशल देखा है, उस कौशल के बल पर तो वे समस्त भारत पर अपना साम्राज्य स्थापित कर सकते हैं। उन्होंने विदेशी राजनीति को स्वीकार कर किसी भविष्य कार्य-क्रम की नींव डाली है। यह बहुत कम लोग जानते हैं।

वसुगुप्त : राजनीति के साथ नारी ! यही तुम्हारे कहने का तात्पर्य है ?

[दबी हुई सम्मिलित हँसी]

[सम्राट् की जय-ध्वनि के बाद सम्राट् चन्द्रगुप्त का कार्यान्तिक पुष्पदन्त के साथ प्रवेश]

वसुगुप्त और
यशोवर्मन : (सम्मिलित स्वर में) सम्राट् की जय !

चन्द्रगुप्त : समाहर्त्ता वसुगुप्त ! कुसुमपुर का वैभव मैंने देखा। मुझे ऐसा ज्ञात होता है जैसे युद्ध की भैरवी ने काषाय वस्त्र धारण कर लिये हैं और वह संन्यासिनी हो गई है। नगर की शोभा मलिन है जैसे तलवार की झनकार वायु में विलीन हो गई है। नागरिकों का यह उल्लास शृगालों का कोलाहल जैसा ज्ञात होता है जिसे हमें मनुष्यत्व देना है। नागरिकों से कहला दो कि वे अब अपने घर जावें।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट्।

[प्रस्थान। धीरे-धीरे जनरव शान्त हो जाता है ।]

चन्द्रगुप्त : और अन्तपाल यशोवर्मन। जो तेज मैंने ग्रीक सैनिक के सेवकों में देखा था वह कुसुमपुर के प्रतिष्ठित नागरिकों तक में नहीं है। यहाँ के व्यक्तियों में स्पष्ट बात कहने का साहस नहीं है। एक छल है, एक विडम्बना है जो सोन नदी की भाँति कुसुमपुर को घेरे हुए है। उसे बन्धन-मुक्त करो, यशोवर्मन।

यशोवर्मन : मुझे विश्वास है, सम्राट् ! आचार्य चाणक्य की नीति से कुसुमपुर एक कुसुम के समान सुन्दर और आपकी कीर्ति की भाँति निर्मल हो जायगा। (वसुगुप्त का प्रवेश)

चन्द्रगुप्त : संभव है। आर्य चाणक्य की नीति ने कुसुमपुर की राजनीति में ऐसे चक्रव्यूह की रचना की है जिसमें अराजकता का पथ मृत्यु-दीवार पर जाकर समाप्त होता है। और उस मृत्यु-दीवार की नींव में जानते हो, क्या है ? समस्त नन्दवंश चिर निद्रा में शयन कर रहा है।

वसुगुप्त : और उस नन्दवंश की आँखों में विलासिता का मद अन्तिम क्षणों तक रहा है।

चन्द्रगुप्त : मुझे इस बात का दुःख है, किन्तु राजनीति कृपाण की धार का मार्ग है। जो व्यक्ति विलासिता का बोझ अपने सिर पर रखकर चलता है, वह उस कृपाण को निमन्त्रण देता है कि वह उसके शरीर के दो टुकड़े कर दे। मैं आचार्य चाणक्य के चक्र-व्यूह की मृत्यु-दीवार को जीवन का प्रकाश-स्तम्भ बनाना चाहता हूँ।

वसुगुप्त : सम्राट् के बाहु-बल में और आचार्य चाणक्य की नीति में यह क्षमता है।

चन्द्रगुप्त : आचार्य चाणक्य की सहायता से जो कुछ भी अभी तक हुआ है, उनके प्रति नागरिकों को असन्तोष तो नहीं होना चाहिए। तक्षशिला के अनुभव से मैं कुसुमपुर की सभी बाधाएँ दूर करना चाहता हूँ। शासन का मापदण्ड प्रजा का सन्तोष और सुख होना चाहिए।

यशोवर्मन : सम्राट् का कथन सत्य है।

चन्द्रगुप्त : इसीलिए मैं एक महोत्सव का आयोजन करना चाहता हूँ, कौमुदी महोत्सव। शरद् ऋतु की आज पूर्णिमा है। इसलिए समाहर्त्ता वसुगुप्त के प्रस्ताव के अनुसार मैंने मध्याह्न में इस निर्णय की घोषणा कर दी है। प्रकृति की इस चन्द्रमयी निर्मलता में जनता के हृदय की समस्त पाप-वासनाएँ धुल जावें। कौमुदी महोत्सव, इस भाँति, कुसुमपुर का महान् राजनीतिक पर्व है।

वसुगुप्त : सम्राट् ! कुसुमपुर के सिंह-द्वार ने अभी तक शृगालों का स्वागत किया है। आपके प्रवेश ने सिंह-द्वार का नाम सार्थक किया।

चन्द्रगुप्त : तुम प्रसन्न कर देने वाली बात कह सकते हो, वसुगुप्त ! इसीलिए मैंने तुम्हें कुसुमपुर का नागरिक होने पर भी कर एकत्र करने वाले समाहर्त्ता का नवीन पद दिया है। तुम मधुर बातें कह कर अच्छी तरह 'कर' एकत्र कर सकते हो।

वसुगुप्त : यह सम्राट् की कृपा है ।

चन्द्रगुप्त : फिर प्रजा का सन्तोष ही मेरे सुख का अग्रदूत है । (कार्यान्तिक पुष्पदन्त को संबोधित करते हुए) कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! कौमुदी महोत्सव के लिए कुसुमपुर के नागरिकों में उत्सुकता है ?

पुष्पदन्त : सम्राट् ! जिस समय से कौमुदी महोत्सव का संवाद नागरिकों के समीप पहुँचा है, उस समय से प्रत्येक नागरिक ने शूद्र महापद्मनन्द की क्रूरता के उपसंहार में आपकी उदारता का 'भरत वाक्य' जोड़ दिया है । सम्राट् ने आर्य चाणक्य की सहायता से शस्त्र और पृथ्वी का उद्धार किया है । आपका कुसुमपुर में प्रवेश शस्त्र-विजय का सूचक है जिसमें शास्त्र का सन्तोष और पृथ्वी का कल्याण है ।

यशोवर्मन : प्रजा-वर्ग में से कुछ व्यक्ति नन्दवंश के समर्थक हो सकते हैं और नन्दवंश के विनाश से उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक है, इसलिए कौमुदी महोत्सव के सम्बन्ध में सम्राट् की घोषणा असन्तोष को सुख और ऐश्वर्य से भरकर उसमें राजभक्ति की तरंग उठा सकती है । कौमुदी महोत्सव में कुसुमपुर के निवासी अपनी नगरी की शोभा देखकर अपने बैर-विरोध को भूल सकते हैं । नगरी का ऐश्वर्य देखकर उनके विचारों की दिशा में परिवर्तन हो सकता है । किन्तु हमें यह उत्सव सतर्कता से देखना चाहिए ।

वसुगुप्त : सतर्कता से देखने की ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है । नगरी का ऐश्वर्य जननी का ऐश्वर्य है । जननी का ऐश्वर्य देखकर किस पुत्र को प्रसन्नता न होगी ? अपरिचित व्यक्ति की ओर से आयी हुई कल्याण-कामना भी जब रुचिकर ज्ञात होती है तो सम्राट् ! आप जैसे उदारमना सम्राट् की ओर से की गई कल्याण-कामना नागरिकों के हृदय में सम्राट् के प्रति भक्ति और श्रद्धा की मन्दाकिनी प्रवाहित किये बिना न रहेगी ।

चन्द्रगुप्त : ऐसा ही हो ! (कार्यान्तिक पुष्पदन्त से) क्यों कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! कौमुदी महोत्सव का क्या प्रबन्ध किया गया है ?

पुष्पदन्त : सम्राट् ! कौमुदी महोत्सव के अवसर पर कुसुमपुर को सजाने में नायक ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। सोन और गंगा के संगम पर एक शत नौकाओं को सम्राट् के शुभ नाम के आकार में सजा कर उन पर चालीस हाथ ऊपर आकाश-दीपों की व्यवस्था की गई है जिससे शरच्चन्द्रिका के हास के साथ सम्राट् का नाम भी दीपों का आलोक-मण्डल बनता हुआ नागरिकों के हृदयों में प्रवेश कर जावे।

चन्द्रगुप्त : यह मनोवैज्ञानिक चातुर्य है ! और ?

पुष्पदन्त : नगर के काष्ठ-प्राचीर के चौंसठ द्वारों पर मंगल-कलशों की तरंगें सुसज्जित होंगी। दूर से ऐसा ज्ञात होगा कि कुसुमपुर प्रकाश का एक सरोवर है जिसमें चारों ओर दीप-किरणों की चौंसठ तरंगें प्रवाहित हो रही हैं !

चन्द्रगुप्त : यह सौन्दर्य-रचना सराहनीय है !

पुष्पदन्त : सम्राट् ! प्राचीर पर जो पाँच सौ सत्तर अलिन्द हैं उनमें नगर की उतनी ही बालाएँ मणिजटित आभूषणों से अपने को सुसज्जित कर प्रकाश के आलोक में नृत्य करेंगी। उनके नृत्य में जब उनके रत्न प्रकाश की किरणों से आलोकित होंगे तो ज्ञात होगा जैसे किरणों के कमलों में प्रकाश-बिन्दुओं के भ्रमर क्रीड़ा कर रहे हैं।

चन्द्रगुप्त : यह तो बहुत सुन्दर होगा !

पुष्पदन्त : और सम्राट् ! प्राचीर के चारों ओर जो सोन नदी की नहर है उसमें सहस्रों दीप-दान होंगे। ज्ञात होगा जैसे नगर के चारों ओर दीपों की आकाश-गंगा बहती जा रही है।

वसुगुप्त : सम्राट् ! नायक पुरस्कार का अधिकारी है।

चन्द्रगुप्त : निस्सन्देह ! और कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! तुम इस बात की घोषणा कर दो कि इस महोत्सव में जितने भी पण व्यय किये

जायँ, वे राजकोष से व्यय न होकर मेरे 'चन्द्रकोष' से व्यय किये जायँ। यद्यपि इस उत्सव से प्रजावर्ग का मनोरंजन होगा, तथापि इसका व्यय-भार मैं वहन करूँगा।

वसुगुप्त : यह सम्राट् की उदारता है। शूद्र राजा महापद्म तो प्रजा से सहस्र-सहस्र पण लेकर उन्हें अपने विलास में व्यय करते थे और प्रजाजनों को उसी अवसर पर प्राण-दण्ड का पुरस्कार मिलता था। अपने को एक राष्ट्र घोषित करते हुए भी वे प्रजा-जनों के हृदयों में अणु मात्र भी स्थान नहीं बना सके थे। यही अवस्था उनके पुत्र धननन्द के समय में थी।

चन्द्रगुप्त : वसुगुप्त ! अपने समारोह को इन अरुचिकर चर्चाओं से क्षत-विक्षत मत होने दो।

वसुगुप्त : मुझसे भूल हुई सम्राट् ! मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।

चन्द्रगुप्त : और कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! प्रजा-भवनों का शृंगार कैसा होगा ?

पुष्पदन्त : सम्राट् ! प्रजा-भवनों की श्रेणी में विविध रंग के प्रकाश-तोरणों की व्यवस्था है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे रात्रि में सम्राट् की राजधानी में सप्त रंगों के इन्द्र-धनुष विविध नृत्य-मुद्राओं में सजे हैं।

वसुगुप्त : और इस अवसर पर सम्राट् के समक्ष नन्द-वंश की राजनर्त्तकी के नृत्य की व्यवस्था भी तो होनी चाहिए ?

यशोवर्मन : यह समय तो नगरी की शोभा देखने का होगा, नर्त्तकी की शोभा देखने का नहीं।

वसुगुप्त : नगरी की शोभा देखने के अनन्तर सम्राट् विश्राम भी तो चाहेंगे ! विश्राम के क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्त्तकी के नृत्य की आवश्यकता भी होगी।

चन्द्रगुप्त : कार्यान्तिक पुष्पदन्त ! जाओ और नायक से कौमुदी महोत्सव की व्यवस्था शीघ्र करने के लिए कहो ! मेरे 'चन्द्रकोष' से

उसे पाँच सहस्र पण के पुरस्कार की सुचना भी दो। कौमुदी महोत्सव के प्रारम्भ का संकेत मुझे तूर्य-नाद से मिलना चाहिए।

पुष्पदन्त : जो आज्ञा सम्राट्! (प्रस्थान)

चन्द्रगुप्त : नायक वास्तव में पुरस्कार का अधिकारी है। कुसुमपुर में ऐसी सौन्दर्य-रचना संभवतः पहली बार होगी! क्यों वसुगुप्त?

वसुगुप्त : निस्संदेह सम्राट्! कुसुमपुर में रहते मेरा इतना जीवन व्यतीत हुआ, किन्तु महाराज नन्द ने विलासिता की थाह पाकर भी कभी अपनी नगरी का ऐसा शृंगार नहीं किया। यह श्रेय आपके ही शासन को होगा कि कुसुमपुर सचमुच सौन्दर्य का कुसुम बन सका।

चन्द्रगुप्त : वसुगुप्त! तुम्हारी प्रशंसा अतिशयोक्तियों से भरी होती है। इतनी प्रशंसा सुनकर मुझे कभी-कभी सन्देह होने लगता है।

वसुगुप्त : किस सम्बन्ध में, सम्राट्?

चन्द्रगुप्त : जो तुम कहते हो, उसकी यथार्थता में।

वसुगुप्त : सम्राट् परीक्षा करके देख लें। सत्य को सत्य कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है, सम्राट्! और फिर सम्राट् भी तो स्पष्ट-वक्ता है! सम्राट् स्वयं इस बात को समझते होंगे।

चन्द्रगुप्त : चन्द्रगुप्त रणनीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझना चाहता, वसुगुप्त! समाहर्त्ता के नवीन पद पर तुम्हारी नियुक्ति के सम्बन्ध में भी महामन्त्री चाणक्य ही समझें। इस सम्बन्ध में उनसे पूछने का मुझे अवकाश ही नहीं मिला।

यशोवर्मन : आचार्य चाणक्य से पूछना बहुत आवश्यक था, सम्राट्?

वसुगुप्त : यशोवर्मन! तुम्हें मेरा अपमान करने का कोई अधिकार नहीं। तुम मुझे युद्ध के लिए प्रेरित करते हो!

यशोवर्मन : सम्राट् के सेवक और आचार्य महामन्त्री चाणक्य के शिष्य होने के नाते मैं द्वन्द्व-युद्ध के लिए प्रस्तुत हूँ, वसुगुप्त! सम्राट्! मैं द्वन्द्व की आज्ञा चाहता हूँ।

चन्द्रगुप्त : यशोवर्मन ! यह राजकक्ष है, समरांगण नहीं ? कौमुदी महोत्सव को रक्त का अभिषेक नहीं चाहिए ! तुम्हें भी इतने शीघ्र क्षुब्ध नहीं होना चाहिए ।

वसुगुप्त : सम्राट् ! मैं क्षमा चाहता हूँ । किन्तु सत्य की रक्षा हो ।

चन्द्रगुप्त : अवश्य होगी । और आज कौमुदी महोत्सव में तो सौन्दर्य की भी रक्षा होगी ! हाँ, तुम राजनर्त्तकी के सम्बन्ध में क्या कह रहे थे ?

वसुगुप्त : सेवक यही निवेदन कर रहा था, सम्राट् ! कि सम्राट् के विश्राम-क्षणों को निद्रालु बनाने के लिए राजनर्त्तकी के नृत्य की व्यवस्था हो !

चन्द्रगुप्त : हाँ, होनी चाहिए ।

वसुगुप्त : तो सम्राट् ! मैंने उसकी सज्जा के लिए विशेष प्रबन्ध करा दिया है । वह राजप्रासाद के उत्तर-कक्ष में वेश-भूषा से सुसज्जित है ।

चन्द्रगुप्त : मेरी इच्छाओं के पूर्व ही कार्य की आयोजना करने वाले वसुगुप्त ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । कौमुदी महोत्सव में सदैव मेरे साथ रहोगे ।

वसुगुप्त : यह मेरा सौभाग्य है, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : इस अवसर पर मुझे तक्षशिला का स्मरण हो आता है, उस तक्षशिला में जहाँ अठारह विषयों की शिक्षा दी जाती थी । सहस्रों विद्यार्थी थे । वहाँ मेरे एक मित्र थे । तुमने भी उनका नाम सुना होगा । प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ कात्यायन ।

वसुगुप्त : वे तो व्याकरण-निर्माता पाणिनि के अभ्यास-सिद्ध शिष्य प्रसिद्ध हैं, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : हाँ, मैं आयुर्वेद, धनुर्वेद और शल्य सीखता था और कात्यायन वेद और व्याकरण । पाणिनि के व्याकरण-सूत्र भाषा और साहित्य के पूर्व ही चलते थे । उसी प्रकार तुम्हारे कार्य भी मेरी इच्छा के पूर्व ही हो जाते हैं ।

वसुगुप्त : आप मुझे आदर देते हैं, प्रभु !

चन्द्रगुप्त : वहीं आचार्य चाणक्य से मैत्री हुई । नीति-निष्णात आर्य चाणक्य के समान बुद्धि और अन्तर्दृष्टि में आज समस्त आर्यावर्त्त में एक भी व्यक्ति नहीं है । यह मेरा सौभाग्य है कि वे मेरे आचार्य और महामन्त्री हैं ।

यशोवर्मन : सम्राट् ! आचार्य चाणक्य की नीति अमर होने की क्षमता रखती है । राजनीति के साथ आयुर्वेद आदि में भी आचार्य चाणक्य निपुण हैं । चीन के एक राजकुमार अपनी नेत्र-पीड़ा की चिकित्सा कराने के लिए तक्षशिला आये थे । आचार्य चाणक्य ने एक सप्ताह की चिकित्सा में ही उन्हें स्पष्ट दृष्टि प्रदान की ।

चन्द्रगुप्त : यह मैं जानता हूँ । उनकी राजनीति पर मुग्ध होकर तक्ष-शिला-शासक आम्भीक उन्हें तक्षशिला में ही रखना चाहता था । किन्तु उन्होंने वहाँ रहना स्वीकार नहीं किया । उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि हम दोनों एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना करेंगे ।

यशोवर्मन : और सम्राट् ! उनका कथन अन्त में कितना सत्य निकला !

वसुगुप्त : सत्य क्यों न होता ? मानवीय हृदय को पहचानने की अन्तः दृष्टि उनमें इतनी अधिक है कि वे एक ही क्षण में उनका सम्पूर्ण कार्यक्रम स्पष्टतः बतला सकते हैं । वे कार्य करने की शैली जानते हैं । अपूर्व शक्ति, अपूर्व साहस और अपूर्व बुद्धि का विचित्र समन्वय हुआ है उनमें ।

यशोवर्मन : वे नर-रत्न हैं, सम्राट् ! आपके सहयोग से वे राज्य को निष्कंटक बना देंगे ।

चन्द्रगुप्त : मैं भी ऐसा ही अनुमान करता हूँ, किन्तु कौमुदी महोत्सव के सम्बन्ध में भी मैं आचार्य चाणक्य से परामर्श नहीं कर सका ।

संग्राम की उलझनों ने अवकाश ही नहीं दिया। किन्तु इसकी सूचना तो उन्हें अवश्य मिल चुकी होगी !

वसुगुप्त : वे आपकी इच्छा का समर्थन ही करेंगे। कौमुदी महोत्सव की उपयोगिता और सामयिकता तो वे अपनी अन्तर्दृष्टि से अवश्य ही देख चुके होंगे। तो अब समय अधिक हो रहा है। सम्राट्, राजनर्त्तकी के नृत्य के सम्बन्ध में क्या निर्णय करते हैं ?

चन्द्रगुप्त : उसका क्या नाम है ?

वसुगुप्त : 'अलका', सम्राट्। वह अनिन्द्य सुन्दरी और अद्वितीय नृत्य-कला की साम्राज्ञी है।

चन्द्रगुप्त : मैं पहले उसे देखना चाहूँगा।

वसुगुप्त : अवश्य, सम्राट् ! वह राज-प्रासाद के उत्तर-कक्ष में वेश-भूषा से सुसज्जित है। आज्ञा हो तो उसे सम्राट् की सेवा में निरीक्षणार्थ उपस्थित करूँ ?

चन्द्रगुप्त : ऐसा ही हो।

वसुगुप्त : जो आज्ञा। मैं उसे अभी सम्राट् की सेवा में उपस्थित करता हूँ।

[**वसुगुप्त का प्रसन्नता के साथ प्रस्थान**]

चन्द्रगुप्त : अन्तपाल यशोवर्मन ! आज राजनर्त्तकी अलका का नृत्य देखकर मैं कुसुमपुर की उत्कृष्ट नृत्य-कला का परिचय पा सकूँगा।

यशोवर्मन : मैं सम्राट् की सेवा में एक निवेदन करना चाहता हूँ ?

चन्द्रगुप्त : निवेदन करो।

यशोवर्मन : यह राजनर्त्तकी अलका विलासी नन्दवंश की राजनीति में है।

चन्द्रगुप्त : यह राजनर्त्तकी अलका ?

यशोवर्मन : हाँ, सम्राट् ! राजनर्त्तकी के जीवन का यह सबसे बड़ा अभि-

शाप है कि वह नन्दवंश के विनाश का कारण बनी और इस तरह वह निर्दोष नहीं कही जा सकती ।

चन्द्रगुप्त : निर्दोष ? वह सब प्रकार से दोषी कही जानी चाहिए । गौतम ने अहल्या को शाप क्यों दिया ? क्या अहल्या ने अपने सदाचार से अपने सौन्दर्य की रक्षा नहीं की थी ? फिर क्यों उसने इन्द्र को नहीं पहचाना ? शची का सौभाग्य अप्सराओं को बाँटनेवाले इन्द्र की लालसा का भी परिचय चाहिए ? वैसे ही क्या अलका महाराज नन्द को नहीं पहचान सकी ? क्या महाराज नन्द की आँखों में उसके अंगराग की अरुण रेखाएँ विद्युत् बन कर नहीं चमक उठीं ? यशोवर्मन ! तुम जानते हो आकाश की उल्का प्रकाश से ओतप्रोत रहती है, किन्तु जब वह उदित होती है तो समस्त संसार में अमंगल की आशंका क्यों होती है ?

यशोवर्मन : जब सम्राट् ऐसा सोचते हैं तो उसके नृत्य की अनुमति क्यों दे रहे हैं ?

चन्द्रगुप्त : केवल कौमुदी महोत्सव को शोभा-सम्पन्न करने के लिए । और कुसुमपुर की जनता के मन में यह संतोष उत्पन्न करने के लिए कि सम्राट् चन्द्रगुप्त ने महाराज नन्द के आश्रितों के साथ सहानुभूति का व्यवहार किया । तुम जानते हो, यशोवर्मन ! महाराज नन्द के लिए जो विष था, उसे मैं अमृत में परिणत करना चाहता हूँ ।

यशोवर्मन : सम्राट् तक्षशिला के स्नातक हैं । सम्राट् जानते हैं कि राजनीति में राजनर्त्तकी का क्या स्थान है !

चन्द्रगुप्त : वही स्थान जो कृपाण की धार को ढकने के लिए म्यान का होता है । राजनीति रूपी कठोर कृपाण का आतंक छिपाने के लिए राजनर्त्तकी रूपी आवरण आवश्यक है, किन्तु वह आवरण कृपाण की धार को कुंठित नहीं करता । राजनीति की परुषता प्रजा की दृष्टि से ओझल रहना आवश्यक है ।

यशोवर्मन : सत्य है, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : किन्तु महाराज नन्द की राजनीति राजनर्त्तकी से कुंठित हो गई। तलवार ही म्यान बनकर रह गई, मैं राजनर्त्तकी को म्यान बनाकर रखना चाहता हूँ। (रुककर) क्या कारण है, मुझे कौमुदी महोत्सव के प्रारम्भ की सूचना तूर्य द्वारा नहीं सुन पड़ी ?

[वसुगुप्त का प्रवेश]

वसुगुप्त : सम्राट् ! राजनर्त्तकी सेवा में उपस्थित है।

चन्द्रगुप्त : उपस्थित करो। वह मेरे कक्ष के वातावरण को संगीत और नृत्य से मुखरित करे।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट् ! (प्रस्थान)

चन्द्रगुप्त : अन्तपाल यशोवर्मन ! नृत्य और संगीत कौमुदी महोत्सव की वह प्रस्तावना है जिसमें उमंग की रूपरेखा मंगल के रंग में सुसज्जित होती है। नृत्य मेरी मनोहर भावनाएँ हैं जिनमें सुख का रहस्य जागता है !

[वसुगुप्त के साथ राजनर्त्तकी अलका का प्रवेश]

अलका : सम्राट् की सेवा में अलका का प्रणाम स्वीकार हो !

[अत्यन्त सुकुमार भाव से प्रणाम करती है]

चन्द्रगुप्त : (हाथ उठाकर) कुसुमपुर की श्री और शोभा की अधिवासिनी बनो। (यशोवर्मन से) यशोवर्मन ! तुम जा सकते हो।

यशोवर्मन : जो आज्ञा सम्राट् ! मेरा निवेदन है कि इस नृत्य-समारोह में आचार्य चाणक्य भी सम्मिलित हों।

चन्द्रगुप्त : (हँसकर) आचार्य चाणक्य ? राजनीति को कविता से मिलाना चाहते हो ? मुझे कोई आपत्ति नहीं। यदि चाहो तो उन्हें यहाँ भेज सकते हो। वे भी राजनीति के कुचक्रों से थक गए होंगे, उन्हें भी विश्राम की आवश्यकता होगी। राजनीति

का मस्तिष्क आज नृत्य की कविता से हृदय की सहानुभूति प्राप्त करे।

वसुगुप्त : जो आज्ञा, सम्राट् ! (प्रस्थान)

चन्द्रगुप्त : राजनीति और कविता ! (राजनर्त्तकी से) क्यों राजनर्त्तकी ! तुम राजनीति की ताल पर नृत्य कर सकती हो ?

अलका : सम्राट् ! अभी तक तो राजनीति ही मेरे नृत्य की ताल थी, किन्तु मैंने इसकी ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। राजनर्त्तकी का राजनीति से क्या सम्बन्ध, सम्राट् ! वह तो राज्य की अनुचरी मात्र है।

चन्द्रगुप्त : (हँसकर) इन्हीं छद्मवेशी शब्दों में अनुचरी स्वामिनी बन जाती है, राजनर्त्तकी ! महाराज नन्द तुम पर मोहित थे या तुम महाराज नन्द पर मोहित थीं ?

अलका : सम्राट्, मुझे क्षमा करें। सच्ची नारी मोहित नहीं होना चाहती। वह आत्म-समर्पण करना चाहती है। जो नारी मोहित होती है, वह अपने रूप का व्यापार करती है, हृदय का समर्पण नहीं।

चन्द्रगुप्त : तुम किस व्यापार में विश्वास करती हो ? रूप के व्यापार में या हृदय के व्यापार में ?

अलका : हृदय का व्यापार नहीं होता, सम्राट !

चन्द्रगुप्त : तो हृदय का समर्पण सही !

अलका : उस समर्पण की कोई भाषा नहीं होती, सम्राट् ! जिस समर्पण की भाषा होती है, वह व्यापार बन जाता है और हृदय का व्यापार कभी नहीं होता !

चन्द्रगुप्त : पर महाराज नन्द तो हृदय का व्यापार करते थे ! और उस व्यापार में वे अपना सारा साम्राज्य हार गए ! क्या यह बात सत्य नहीं है ?

अलका : सत्य है, सम्राट् ! किन्तु पुरुष तो व्यापारी है, वह अपने व्यापार में सब कुछ लुटा सकता है !

चन्द्रगुप्त : पुरुषों के प्रति तुम्हारी बहुत हीन दृष्टि है, राजनर्त्तकी !

अलका : उसी प्रकार जैसे नारियों के प्रति पुरुषों की हीन दृष्टि है, सम्राट् ! वे नारी को विलासिता की सामग्री बनाकर छोड़ देते हैं।

चन्द्रगुप्त : किन्तु कोई नारी बलपूर्वक विलासिता की सामग्री नहीं बनायी जा सकती। वह अपनी विजय के लिए विलासिता की सामग्री बनती है और दोष पुरुषों को देती है !

अलका : सम्राट् ! राजनीति के आचार्य हैं और सेविका राजनीति के पैरों से कुचली हुई धूल है, सम्राट् ! मैं क्या निवेदन कर सकती हूँ !

चन्द्रगुप्त : किन्तु राजनर्त्तकी ! धूल भी सिर पर चढ़ सकती है !

अलका : हाँ, सम्राट् ! जब वह पैरों से ठुकरायी जाती है। किन्तु सेविका का यह अधिकार नहीं।

चन्द्रगुप्त : अधिकार नहीं, राजनर्त्तकी ! यह तो उसकी गति है। गति में अधिकार का आडम्बर नहीं होता, उसमें शक्ति की विद्युत होती है। और तुममें वह शक्ति की विद्युत् है जिसने आकाश का हृदय चीरते हुए तड़पकर नन्द जैसे विशाल शाल वृक्ष को धराशायी कर दिया।

अलका : तब तो मुझे विद्युत् की भाँति ही पृथ्वी में विलीन हो जाना चाहिए, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : किन्तु राजनर्त्तकी महासती सीता नहीं बन सकती जो भूमि में विलीन हो जावे। राजनर्त्तकी को राज्य का शृंगार करना पड़ता है।

अलका : वह मेरे जीवन का अभिशाप है, सम्राट्। ऐसे फूलों का क्या सौन्दर्य जो किसी शव पर बिखेर दिये जाते हैं। आज आपके चरणों पर गिर कर मैं अपने जीवन से मुक्त हो जाऊँगी।

चन्द्रगुप्त : निराशा की बातें मत करो, राजनर्त्तकी ! तुम जानती हो

आज कौमुदी महोत्सव है। कुसुमपुर की जनता मेरे साथ आनन्द-विभोर हो जाना चाहती है। तुम्हें मधुर गायन से वातावरण को गुंजरित करना है।

अलका : सम्राट् की जो आज्ञा, किन्तु आज से मैं राजनर्त्तकी का पद त्याग दूँगी और आपके चरणों की धूल में शयन कर अमर हो जाऊँगी।

चन्द्रगुप्त : राजनर्त्तकी ! तुम्हारा यह वार्त्तालाप महाराज नन्द से नहीं हो रहा, सैनिक चन्द्रगुप्त से हो रहा है। मुझे अपने चरणों की धूल वीरों की परम्परा के लिए छोड़नी है, राजनर्त्तकियों की परम्परा के लिए नहीं। किन्तु मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। कुसुमपुर के नागरिकों को नृत्य-शिक्षा दो और उसका मंगलाचरण आज कौमुदी महोत्सव में तुम्हारे नृत्य से हो। नृत्य प्रारम्भ करो जिसमें कुसुमपुर का वायुमंडल तुम्हारे नूपुरों के स्वरों का वाहक बन कर कौमुदी महोत्सव का निमन्त्रण प्रत्येक दिशा में पहुँचा दे।

वसुगुप्त : अलका ! तुम्हें सम्राट् को कुसुमपुर के आदर्श नृत्य का परिचय देना है। इस समय तुम्हें ऐसा नृत्य करना है कि सम्राट् नृत्य-विभोर होकर अपने जीवन के समस्त विषाद को भूल जायँ !

चन्द्रगुप्त : मुझे तो कोई विषाद नहीं, वसुगुप्त !

वसुगुप्त : सम्राट् को विषाद हो ही क्या सकता है ! सम्राट् तो सैनिक हैं। सैनिकों को विषाद कैसा ! मैं तो यह कहना चाहता था कि कुसुमपुर के नागरिकों के हितचिन्तन में लगा हुआ आपका मन जो थका हुआ है. . . .

चन्द्रगुप्त : ठीक है, राजनर्त्तकी, नृत्य प्रारम्भ हो !

अलका : जो आज्ञा सम्राट् की !

[प्रणाम कर नृत्य प्रारम्भ करती है। कुछ देर नृत्य करने के बाद मधुर कण्ठ से गीत गाती है।]

आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
द्वार पर है अलि का गुंजन !
सजीली थी मधुवन की गली,
समीरन धीरे-धीरे चली,
फूल के पास खिल गई कली,
और नभ से संध्या ने उतर,
लगाया आँखों में अंजन !
आज मधुमय कुसुमों के द्वार—
द्वार पर है अलि का गुंजन।

[थोड़ी देर तक नृत्य होता रहता है। अन्त में सम्राट् के मुख से प्रशंसा के शब्द निकलते हैं।]

चन्द्रगुप्त : बहुत सुन्दर, राजनर्त्तकी अलका ! तुम जितनी सुन्दर हो उतना ही सुन्दर तुम्हारा नृत्य है। यह लो अपना पुरस्कार !

[चन्द्रगुप्त अपने गले से मोतियों की माला उतारते हैं। सहसा आचार्य चाणक्य का प्रवेश।]

चाणक्य : पुरस्कार नहीं दिया जायेगा, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : (आश्चर्य से रुककर) महामन्त्री, चाणक्य !

चाणक्य : सम्राट् ! आग बुझ जाने पर भी आग की राख गरम रहती है, उसे तुम हाथों में नहीं उठा सकते। तुम इतने थोड़े समय में कैसे मान बैठे कि कुसुमपुर की आग इतनी शीतल भस्म हो गई है कि उसमें कुसुमों की क्यारियाँ सजायी जायँ ?

चन्द्रगुप्त : महामन्त्री, चन्द्रगुप्त ने कुसुमों की क्यारियों में नहीं, समरांगण में अपने जीवन का वैभव देखा है, उसने नूपुरों की झंकार में नहीं, तलवारों की झंकार में अपने जीवन का संगीत गाया है। आपने यह कैसे समझ लिया कि चन्द्रगुप्त के क्षणिक मनोविनोद में उसका समरांगण कुसुम की क्यारी बन गया ?

आपको यह समझना चाहिए कि यह क्षणिक विश्राम भविष्य के युद्ध की भूमिका है ।

चाणक्य : और सम्राट् चन्द्रगुप्त ! यदि इस क्षणिक विश्राम में ही जीवन का अन्त हो गया तो ? तुम्हारे भविष्य के वैभव का समरांगण ही कहीं तुम्हारे शव का श्मशान बन गया तो इस विश्राम के क्षण को तुम क्या कहोगे ?

चन्द्रगुप्त : आर्य, विश्राम के क्षणों की सीमा क्या और कितनी है, वह जानने के लिए चन्द्रगुप्त के पास पर्याप्त विवेक. . . .

चाणक्य : (बीच में ही) नहीं है । यही समझकर मैं अपने साथ सैनिक लाया हूँ । (पुकार कर) सैनिको ! राजनर्त्तकी और समाहर्त्ता को अपने नियन्त्रण में लो !

[सैनिक नेपथ्य से निकल कर आगे बढ़ते हैं ।]

वसुगुप्त : सम्राट् ! राजमर्यादा भंग हो रही है, रक्षा कीजिए !

चन्द्रगुप्त : महामन्त्री, वसुगुप्त अपने नवीन समाहर्त्ता हैं !

चाणक्य : किन्तु इस समय वे बन्दी हैं । सैनिको, दोनों को नियन्त्रण में लो । यदि कोई विरोध हो तो बल-प्रयोग हो !

वसुगुप्त : (करुण स्वर में) मैं निर्दोष हूँ, मैं निर्दोष हूँ, सम्राट् ! महामन्त्री ! मैं निर्दोष हूँ ।

अलका : (अत्यन्त करुण स्वर में) मेरा स्पर्श कोई न करे ! मैं नारी हूँ । नारी की मर्यादा सुरक्षित हो ! सम्राट् । नारी की मर्यादा सुरक्षित हो ! मैं स्वयं नियन्त्रण में होती हूँ । हाय, नारी नियन्त्रण में, सदैव नियन्त्रण में, जीवन भर नियन्त्रण में । (विह्वल हो जाती है ।)

चन्द्रगुप्त : (आगे बढ़कर) आर्य चाणक्य ! . . . . .

चाणक्य : कुछ मत कहो इस समय, सम्राट् चन्द्रगुप्त ! चाणक्य अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह समझता है । सैनिको ! दोनों को नियन्त्रण में लेकर दूसरे कक्ष में ले जाओ ।

सैनिक : जो आज्ञा। (दोनों को बन्दी कर सैनिकों का प्रस्थान)

चन्द्रगुप्त : यह राजमर्यादा की सबसे बड़ी अवहेलना है, महामन्त्री ! जिस राजमर्यादा की पूजा हमने रक्त चढ़ा कर की है, उसी राजमर्यादा को तुच्छ सैनिक अपने पैरों की धूल से कलंकित करें ! यह कैसी राजनीति है ! आज कौमुदी महोत्सव के अवसर पर.....

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव ?

चन्द्रगुप्त : हाँ, कौमुदी महोत्सव ? क्या आपने मेरी घोषणा नहीं सुनी ?

चाणक्य : वह सुनने योग्य नहीं थी !

चन्द्रगुप्त : आप राजमर्यादा का इतना अपमान कैसे कर रहे हैं, महा-मंत्री ! कौमुदी महोत्सव की घोषणा कुसुमपुर में मेरी प्रथम राजघोषणा है।

चाणक्य : वह राजघोषणा प्रारम्भ होने से पूर्व ही समाप्त हो गई !

चन्द्रगुप्त : (आश्चर्य से) समाप्त हो गई ! किसने यह साहस किया ?

चाणक्य : मैंने, आर्य चाणक्य ने।

चन्द्रगुप्त : इसीलिए मुझे घोषणा का तूर्य नहीं सुन पड़ा। तो आपने कौमुदी महोत्सव की घोषणा नहीं होने दी !

चाणक्य : नहीं। मैंने ही घोषणा नहीं होने दी।

चन्द्रगुप्त : मैं कारण जानना चाहता हूँ।

चाणक्य : मैं कारण नहीं बतला सकता।

चन्द्रगुप्त : सम्राट् कौन है, चन्द्रगुप्त या चाणक्य ?

चाणक्य : चन्द्रगुप्त।

चन्द्रगुप्त : फिर सम्राट् चन्द्रगुप्त की आज्ञा की अवहेलना क्यों हो रही है ?

चाणक्य : इसलिए कि वह आज्ञा किसी मनचले बालक के हठ की तरह है।

चन्द्रगुप्त : फिर भी उसकी रक्षा होनी चाहिये।

चाणक्य : नहीं, बालक आग पकड़ना चाहता है। उसे आग पकड़ने की सुविधा नहीं दी जा सकेगी।

चन्द्रगुप्त : यह तुम्हारा गर्व है, महामन्त्री !

चाणक्य : यह तुम्हारा अज्ञान है, सम्राट् !

चन्द्रगुप्त : (क्रुद्ध होकर) महामन्त्री ! कुसुमपुर की विजय में तुम्हारा हाथ रहा है, तो क्या इतनी छोटी-सी विजय ने ही तुम्हारे गर्व की चिनगारी को फूंक मारकर लपट में परिवर्तित कर दिया ! यह गर्व उस चिता की ज्वाला है जिसमें तुम्हारी राजनीति जल कर भस्म हो सकती है।

चाणक्य : मुझे इसकी चिन्ता नहीं है, सम्राट् ! गर्व मेरे अन्तःकरण का अधिकार है। वह राज्य से अनुशासित नहीं है। किन्तु मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि चाणक्य के गर्व की चिनगारी स्वर्ग के राज्य को प्राप्त करके भी लपट नहीं बनेगी ! हाँ, अपमान के हल्के झोंके से ही वह दावाग्नि बन कर तुम्हारे वैभव के नन्दन वन को क्षण भर में भस्म कर सकती है। क्या तुम नन्दवंश के विनाश की पुनरावृत्ति देखना चाहते हो ?

चन्द्रगुप्त : आर्य चाणक्य ! सैनिक चन्द्रगुप्त विलासी नन्द नहीं है जो पतन के गर्त्त के मुख पर खड़ा होकर हलकी-सी राजनीति के धक्के की प्रतीक्षा करे। मौर्य चन्द्रगुप्त हिमाद्रि की तरह सुदृढ़ है जिसे महामंत्री चाणक्य की कुटिल राजनीति-रूपी आँधियों के झोंके एक क्षण भर भी विचलित नहीं कर सकते।

चाणक्य : मौर्य चन्द्रगुप्त ! क्षत्रियत्व क्या इतना पतित हो गया कि वह ब्राह्मणत्व पर पदाघात करे ? क्या तुम जानते हो कि मौर्य हिमाद्रि की भाँति सुदृढ़ कैसे हो पाया ? उसकी सुदृढ़ता को धारण करने वाली पृथ्वी इसी ब्राह्मण की राजनीति है। यदि यह शक्ति एक क्षण के लिए अलग हो जाय तो हिमाद्रि इतने वेग से नीचे गिरेगा कि वह अपने साथ समीपवर्त्ती वृक्षों को भी लेकर समुद्र-तल में चला जायगा और तब समुद्र की

तरंगें इसी ब्राह्मण के चरणों में लोटने के लिए आवेंगी और यह ब्राह्मण उस ओर देखेगा भी नहीं ।

चन्द्रगुप्त : आर्य चाणक्य ! संसार में जितने प्रतापशाली राज्य हुए हैं क्या वे सब महामंत्री चाणक्य की राजनीति के बल पर ही हुए हैं ? और जहाँ महामंत्री चाणक्य नहीं हैं, वहाँ किसी राज्य की स्थापना भी नहीं है ? क्या सारे राज्यों की शक्ति महामंत्री चाणक्य की शक्ति से ही भिक्षा माँगकर संसार में चलीं है और क्या चन्द्रगुप्त इतना हीन है कि उस शक्ति के बल पर विजय प्राप्त करता है ? तब जाने दो ऐसी शक्ति को । उसे मैं आज ही दूर करता हूँ । महामंत्री चाणक्य ! तुम महामंत्री पद से मुक्त किये गए ।

चाणक्य : मौर्य ! यह लो अपना शस्त्र (फेंक देते हैं) यह कलंक इसी समय दूर करता हूँ । राजमंत्री राक्षस की राजनीति के कुचक्र में आनेवाले चन्द्रगुप्त ! क्या मैं अपनी शिखा खोलकर विनाश की फिर प्रतिज्ञा करूँ ? जिस ब्राह्मण की शिखा-सर्पिणी ने नन्द-वंश को एक ही दंशन में समाप्त कर दिया, क्या मौर्य भी उस सर्पिणी पर हाथ रखना चाहता है ? जिस चन्द्रगुप्त को अपना आत्मीय समझकर कुसुमपुर के सिंहासन पर आरूढ़ कराया उसी चन्द्रगुप्त के विनाश से क्या श्मशान को सुसज्जित करूँ ! वाह रे ब्राह्मण ! ब्रह्म-ज्ञान में जीवित रहनेवाला आज राज्य के कुचक्रों से लांछित हो रहा है। आज अपने सृष्टि-सागर का विष मैं ही पी रहा हूँ। किन्तु चन्द्रगुप्त ! मुझमें कालकूट को भी पी जानेवाले नीलकंठ की शक्ति है ! समझते हो ?

चन्द्रगुप्त : समझता हूँ, चाणक्य ! (शस्त्र उठाते हुए) यह शस्त्र अब मेरे अधिकार में है । आज से मैं समस्त राजनीति अपने बाहु-बल में केन्द्रित कर कुसुमपुर का शासन करूँगा और विद्रोह के सर्पों को जलाने के लिए महायज्ञ करूँगा ।

चाणक्य : करो, इसी समय से करो वह महायज्ञ और उसमें तुम भी

विनष्ट हो जाओ ! आज कौमुदी महोत्सव करो और अपने नवीन समाहर्त्ता और राजनर्त्तकी के रूप में अपनी मृत्यु को निमंत्रण दो ।

चन्द्रगुप्त : मेरे आनन्दोत्सव से ईर्ष्या करने वाले चाणक्य ! तुम यही कहो ! ब्राह्मण को इन ऐश्वर्यों से द्वेष होना स्वाभाविक है ।

चाणक्य : आत्म-चिन्तन में जो ऐश्वर्य है, क्षत्रिय ! वह इन तुच्छ भड़-कीले वैभवों में नहीं है और वह वैभव जो अपने साथ मृत्यु लिये हुए है ! शत्रु के गुप्तचरों और विषकन्याओं पर विश्वास करने वाला सम्राट् एक ही पदक्षेप में मृत्यु का आलिंगन उसी भाँति करता है जैसे एक ही उछाल में पतिंगा दीप-शिखा के भीतर जलती हुई मृत्यु में भस्म हो जाता है । तुम भी भस्म हो जाओ और अपने वैभव का जला हुआ काला धुआँ अपने पीछे छोड़ जाओ ।

चन्द्रगुप्त : अपनी राजनीति में अविश्वासी बने हुए, चाणक्य ! तुम प्रत्येक व्यक्ति को गुप्तचर और प्रत्येक नारी को विषकन्या समझ सकते हो ! राज्य-सीमा की रेखा पर रेंगती हुई तुम्हारी आँखों की पुतलियाँ काले कीड़े की तरह केवल निरीह जीवों की हिंसा करना ही जानती हैं । महामंत्री की विशेषता. . . .

चाणक्य : महामंत्री मत कहो, मौर्य ! मैं अब तुम्हारा महामंत्री नहीं हूँ । मैं भी तुम्हें सम्राट् नहीं कह रहा हूँ । मैं केवल एक ब्राह्मण हूँ, वह ब्राह्मण जिसकी शिखा बहुत दिनों तक खुली रही और वह तभी बाँधी गई जब उसने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार नन्द-वंश का विनाश कर दिया । अब उसके सामने केवल दो ही मार्ग हैं । या तो वह पुनः अपनी शिखा खोल कर मौर्य-वंश के विनाश की प्रतिज्ञा करे या क्षितिज की भाँति अपनी बाहुओं को फैला कर नक्षत्रों के नेत्रों से विश्वंभरा पृथ्वी को अपनी करुणा और शान्ति से सींचे । तब समस्त सृष्टि में उसका राज्य

होगा, पशु-पक्षी उसके सहचर होंगे और वायु झकोरों में झूम कर वह सामगान करता हुआ तुम्हें क्षमा करेगा।

चन्द्रगुप्त : यह तपोवन नहीं है, आर्य ! और चन्द्रगुप्त क्षमा का न तो पात्र है, न अभिलाषी। अब तपोवन के होमकुण्ड में हिंसा करो या कुश-कंटक चरनेवाले हरिणों को क्षमा करो, किन्तु जाने के पूर्व अपने नवीन समाहर्त्ता वसुगुप्त तथा राजनर्त्तकी अलका पर लगाये हुए लांछन का निराकरण करना होगा ! और यदि यह लांछन असत्य निकला तो राज्य का दण्ड-विधान अपराधी को पहचानता है। यह मेरा अन्तिम आदेश है।

चाणक्य : अपने नवीन महामंत्री को प्रथम आदेश दो, मौर्य ! मैं तुम्हारे समक्ष सत्य के उद्घाटन के लिए बाध्य नहीं हूँ।

चन्द्रगुप्त : जो ब्राह्मण सत्य के उद्घाटन को अपना धर्म न समझे, उसे मैं किस संज्ञा से सम्बोधित करूँ ?

चाणक्य : सत्य का उद्घाटन मैं अपनी इच्छा से कर सकता हूँ। किन्तु इस उद्घाटन के अनन्तर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा। यह वातावरण अभिशाप बन कर मेरे रोम-रोम में तीव्र प्रतिहिंसा की ज्वाला उत्पन्न कर रहा है।

चन्द्रगुप्त : सर्वप्रथम प्रमाण उपस्थित किया जाय !

चाणक्य : (पुकार कर) सैनिक !

[सैनिक का प्रवेश]

सैनिक : आज्ञा, महाराज !

चाणक्य : समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्त्तकी अलका को उपस्थित करो।

सैनिक : जो आज्ञा।

[प्रस्थान]

चाणक्य : चन्द्रगुप्त ! प्रजा के संस्कार जल्दी नहीं छूटते। इस समय भी महाराज नन्द से सहानुभूति रखनेवाले व्यक्ति कुसुमपुर में

विद्रोह की लपटों के स्फुलिंग बने हुए हैं। राजमंत्री राक्षस कुसुमपुर के बाहर रहकर भी कुसुमपुर के नागरिकों में अविश्वास के बीजों पर अपनी नीति का जल सींच रहा है। कुसुमपुर में समस्त कार्यों में षड्यंत्रों का जाल जयकार के छद्मवेश में चारों ओर घूम रहा है और तुम कौमुदी महोत्सव में असावधान होकर विषकन्या का स्पर्श करना चाहते हो? चन्द्रगुप्त! मैं अपने निस्पृह नेत्रों से सब कुछ देख रहा हूँ... और तुम देखकर भी कौमुदी महोत्सव की शीतलता में हलाहल पान करने जा रहे हो! फिर यही कहना चाहता हूँ.....

[सैनिक का वसुगुप्त और अलका के साथ प्रवेश]

अच्छा! समाहर्त्ता वसुगुप्त और राजनर्त्तकी अलका! सैनिको! तुम जाकर द्वार पर अपना स्थान ग्रहण करो। (**सैनिकों का प्रणाम कर प्रस्थान। वसुगुप्त को सम्बोधित करते हुए**) समाहर्त्ता वसुगुप्त! मुझे दुःख है कि मैंने तुम्हें सैनिकों के नियंत्रण में रखा। मैं जानता हूँ कि तुम सम्राट् चन्द्रगुप्त के विश्वासपात्र नवीन समाहर्त्ता हो!

वसुगुप्त : मैं समाहर्त्ता नहीं हूँ, महामंत्री! यदि समाहर्त्ता होता तो सम्राट् समाहर्त्ता का अपमान इस भाँति नहीं देख सकते थे!

अलका : (**करुण स्वर में**) और नारी का अपमान! आज तक कुसुमपुर के राजकक्ष में नहीं हुआ! मैं अपमानित हुई हूँ, सम्राट्!

चन्द्रगुप्त : (**दृढ़ता से**) निस्सन्देह! मैं दोनों के अपमान का प्रतिकार करूँगा।

चाणक्य : (**वसुगुप्त से**) सम्राट् से तुमने आश्वासन पा लिया है, समाहर्त्ता और (**राजनर्त्तकी से**) राजनर्त्तकी! तुम्हें भी सम्राट् के बाहुओं की शीतल छाया प्राप्त हो चुकी है, किन्तु (**वसुगुप्त से**) मैं जानना चाहता हूँ समाहर्त्ता! राजनर्त्तकी से तुम्हारा परिचय कितना पुराना है?

वसुगुप्त : मैं राजनर्त्तकी का नाम भी नहीं जानता, महामंत्री ! मुझे तो कौमुदी महोत्सव की घोषणा के कुछ क्षण पूर्व राजनर्त्तकी का परिचय मिला था।

चाणक्य : तुम कुसुमपुर के निवासी हो, समाहर्त्ता !

वसुगुप्त : कुसुमपुर के एक ग्राम अमरावती का निवासी हूँ, मैं वहाँ का अन्तपाल था।

चाणक्य : तो तुम कुसुमपुर में कब से निवास करते हो ?

वसुगुप्त : मैंने कहा न, महामंत्री ! मैं कुसुमपुर का नहीं, अमरावती का निवासी हूँ।

चाणक्य : सम्राट् चन्द्रगुप्त ने तुम्हें कुसुमपुर में पाया या अमरावती में ? उन्होंने तुम्हें अपना समाहर्त्ता बनाने में तो कुसुमपुर की नागरिकता को ही ध्यान में रखा होगा ?

वसुगुप्त : मैं कुसुमपुर में निवास नहीं करता, महामंत्री ! मैं अमरावती से कुसुमपुर आया अवश्य करता हूँ।

चाणक्य : वर्ष में कितनी बार आया करते हो ?

वसुगुप्त : मैं कह नहीं सकता !

चाणक्य : (कठोर स्वर में) प्रश्न की अवहेलना नहीं हो सकती ! ठीक उत्तर दो।

वसुगुप्त : महाराज नन्द के प्रमुख उत्सवों में आया करता था।

चाणक्य : गत वर्ष वसन्तोत्सव में सम्मिलित हुए थे ? अमरावती के अन्तपाल !

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : वसन्तोत्सव में राजनर्त्तकी अलका ने नृत्य किया था। तुमने उसे देखा था ?

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : तब तुम अलका के नाम से परिचित हो !

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि मैं अलका का नाम भी नहीं जानता और कहा कि कौमुदी महोत्सव के एक क्षण पूर्व राजनर्त्तकी का परिचय मिला।

वसुगुप्त : मैं राजनीति की बातें प्रकट नहीं किया करता !

चाणक्य : (हँसकर) बड़े राजनीतिज्ञ हो ! अच्छा, राजनीति की बातें मत कहो। सीधा उत्तर दो, तुम राजमंत्री राक्षस के गुप्तचर कब हुए ?

वसुगुप्त : महामंत्री ! मैं दुष्ट राक्षस को जानता भी नहीं हूँ।

चाणक्य : उसी तरह जिस तरह तुम राजनर्त्तकी को नहीं जानते थे ?

वसुगुप्त : (चन्द्रगुप्त से) सम्राट् ! मेरे सम्मान की रक्षा कीजिए !

चन्द्रगुप्त : मैं रक्षा करूँगा ! पहले महामंत्री आचार्य चाणक्य के प्रश्नों के उत्तर दे दो।

वसुगुप्त : मैं उत्तर देने में असमर्थ हूँ, सम्राट् ! कौमुदी महोत्सव के इस अवसर पर मैंने अधिक आसव पान कर लिया है। इसी कारण मेरे उत्तर ठीक नहीं हैं।

चाणक्य : कोई हानि नहीं, समाहर्त्ता ! मैं तुम्हें और भी आसव पान करने के लिए दूंगा जिससे तुम्हारे लिए यह कौमुदी महोत्सव और भी मंगलमय हो।

वसुगुप्त : मैं अधिक आसव पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूँ, महामंत्री !

चाणक्य : अभी तुमने कहा कि अधिक आसव पान करने के कारण मैं ठीक उत्तर नहीं दे सकता। अब कहते हो, मैं अधिक आसव पान करना राजधर्म के प्रतिकूल समझता हूँ।

वसुगुप्त : मैं राजनीति के रहस्य आपके समक्ष खोलने में असमर्थ हूँ।

चाणक्य : बार-बार राजनीति ! प्रत्येक प्रश्न में राजनीति ! राज्य का समाहर्त्ता राज्य के महामंत्री से राजनीति के रहस्य नहीं कहना चाहता ? और आसव पान करने में भी तुम्हारी राजनीति है !

हाँ, तुम्हारी नहीं, मेरी है। समाहर्त्ता ! यदि तुम नहीं चाहते तो मैं तुमसे राजनीति के रहस्य खोलने के लिए नहीं कहूँगा। कविता की बातें कहूँगा। कविता की बातें कर सकते हो ? उत्तर दो, जो आसव वन्य कुसुमों की सुगन्धि लिये हुए है, वह इतना मादक क्यों होता है ?

वसुगुप्त : मैं नहीं जानता, महामंत्री !

चाणक्य : तुम नहीं जानते ? मैं जानता हूँ। जो आसव वन्य कुसुमों की सुगन्धि लिये हुए है वह इतना मादक इसलिए है कि उसे सुन्दरियाँ अपने हाथ से पान कराती हैं, ऐसी सुन्दरियाँ जिनके नेत्रों में आसव है। तुम्हारे आसव को देखते हुए अपने नेत्रों का आसव उसमें ढालकर उसे और भी मादक बना देती हैं।

वसुगुप्त : आप तो राजनीति और कविता दोनों में पारंगत हैं, महामंत्री !

चाणक्य : चाणक्य की सूखी शिराओं में कविता कहाँ ! किन्तु तुम्हारी इच्छानुसार मैं राजनीति के रहस्यों के बदले तुम्हें कविता देना चाहता हूँ। एक बात और पूछूँ ? सुन्दरियों के नेत्रों में अधिक मादकता है या अधरों में।

वसुगुप्त : इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है, महामंत्री !

चाणक्य : राजनीति के रहस्यों से भी कठिन, समाहर्त्ता ! जिसमें तुम पारंगत हो ? अमरावती के अन्तपाल और महाराज नन्द के वसन्तोत्सव में सम्मिलित होने वाले वसुगुप्त के लिए यह प्रश्न कठिन नहीं है। महाराज नन्द के वसन्तोत्सव में 'अनंग क्रीड़ा' का आयोजन हुआ था ?

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : और तुम उसमें सम्मिलित हुए थे। तब तो तुम जानते ही होगे कि सुन्दरियों के नेत्रों से अधिक अधरों में मादकता होती है। होती है समाहर्त्ता ? (तीव्र स्वर में) उत्तर दो।

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : तो जो आसव सुन्दरियाँ अपने अधरों से लगाकर देती हैं उसमें और भी अधिक मादकता होती है ? (तीव्र स्वर में) उत्तर दो।

वसुगुप्त : हाँ, महामंत्री !

चाणक्य : अब मुझे तुमसे कोई प्रश्न नहीं पूछना। तुमसे इतने प्रश्न पूछकर मैंने तुम्हें जो कष्ट दिया है, उसके लिए मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ। और वह पुरस्कार यह है कि तुम राजनर्त्तकी अलका के अधरों से स्पर्श किये गए मादक आसव का एक घूँट. . . . .

अलका : (विह्वल होकर) क्षमा कीजिए महामंत्री ! मैं आसव का स्पर्श नहीं करूँगी। आज तक न मैंने आसव पान किया है और न पान कराया है। मैं क्षमा की भीख माँगती हूँ, महामंत्री !

चाणक्य : कौमुदी महोत्सव में पुरस्कार मिलता है, देवी ! भीख नहीं। (पुकारकर) सैनिक ! (सैनिक का प्रवेश) आसव का एक चषक उपस्थित करो।

[प्रस्थान]

सैनिक : जो आज्ञा !

अलका : (बिलखकर) महामंत्री, मेरा जीवन अभिशाप से परिपूर्ण है। मैं राजनर्त्तकी बन कर नारी भी नहीं रह पायी। मैं संसार की सबसे बड़ी विडम्बना हूँ, मैं पाप की कालिमा हूँ, मैं रौरव की ज्वाला हूँ ! मैं. . .मैं. . . .

चाणक्य : नहीं देवी ! तुम महाराज नन्द की राजनर्त्तकी हो ! अनिंद्य सुन्दरी, कलापूर्ण नृत्य की सम्राज्ञी ! हाँ, मुझे दुःख है कि तुम्हारा जीवन. . . .(सैनिक चषक लेकर आता है।) क्या, ले आए चषक ? हाँ, मैं अपने साथ ही तो लाया था, आसव और चषक लाओ ! तुम इसका पान करो, राजनर्त्तकी !

अलका : महामंत्री ! मुझे आसव पान न कराओ, मुझे विष दे दो !

भयानक हलाहल दे दो ! उससे शान्ति मिलेगी ! मेरी जिह्वा पर सर्प-दंशन चाहिए सर्प-दंशन, महामंत्री !

चाणक्य : सर्प-दंशन तुम्हें नहीं चाहिए, राजनर्त्तकी ! किसी और को चाहिए । (**सैनिक से**) सैनिक ! बलपूर्वक यह आसव राज-नर्त्तकी को पान कराओ । (**सैनिक राजनर्त्तकी को बलपूर्वक आसव पान कराता है।**) बस, रहने दो ! (**सैनिक राज-नर्त्तकी के अधरों से चषक हटाता है।**) अब यह आसव राजनर्त्तकी के अधरों को छूकर और भी मादक बन गया। अब कौमुदी महोत्सव के समाहर्त्ता वसुगुप्त को उनका पुरस्कार चाहिए । सैनिक ! यह शेष आसव समाहर्त्ता वसुगुप्त पान करेंगे ।

वसुगुप्त : सम्राट् ! मेरी रक्षा कीजिए । मैं वह आसव पान नहीं करूँगा, नहीं करूँगा !

चाणक्य : सैनिक ! वसुगुप्त को शेष आसव बलपूर्वक पान कराओ । (**सैनिक बलपूर्वक आसव पान कराते हैं। घुटते हुए कण्ठ की आवाज**)

वसुगुप्त : (**लड़खड़ाते शब्दों में**) ओह ! घोर. . .हलाहल. . .आग की. . .ज्वाला ! सर्प-दंशन. . .सर्प. . .दंशन. . . . .महामंत्री, चाणक्य ! तुम. . .राज. . .मंत्री. . .राक्षस. . .पर. . .विजयी . . .हुए । कौमुदी महो. . .त्. . .सव. . .नहीं. . .हो. . . सका. . . .! . . . .अलका. . . .मुझे. . .क्षमा कौमुदी. . . . . . महो. . .त्. . .सव. . .कौ. . .मु. . .दी. . .महो. . .त्. . .स. . .व

[प्राण छूट जाते हैं]

चन्द्रगुप्त : ओह विष-कन्या ! राजनर्त्तकी विष-कन्या है ! अधरों से स्पर्श किया गया आसव. . . .हलाहल. . . .बन गया ! समाहर्त्ता. . . . .

चाणक्य : समाहर्त्ता अब इस संसार में नहीं है, चन्द्रगुप्त ! अब अलका. . .

अलका : सम्राट् क्षमा कीजिए ! महामंत्री, प्राणों की भिक्षा दीजिए ! मैं निर्दोष हूँ ! मैं निर्दोष हूँ ! सम्राट् ! मैं आपके चरण चूम कर. . .(**चरणों पर गिरने के लिए आगे बढ़ती है ।**)

चाणक्य : पीछे हटो ! पीछे हटो, चन्द्रगुप्त ! (**चन्द्रगुप्त पीछे हटते हैं ।**) यह तुम्हारे पैरों में अपने दाँत चुभा कर तुम्हे मृत्यु-मुख में ढकेल देगी । यह इसका अन्तिम प्रयोग है । नारी रूप में भयानक सर्पिणी विष-कन्या ! राजमंत्री राक्षस ने कौमुदी महोत्सव का प्रस्ताव वसुगुप्त से कराकर असावधान चन्द्रगुप्त को विष-कन्या के प्रयोग से नष्ट करने की चाल सोची थी । सैनिको ! राजनर्त्तकी को बन्दी करो । इसका प्रयोग शत्रु पर ही किया जायेगा । (**सैनिक राजनर्त्तकी को बन्दी करते हैं ।**) समाहर्त्ता वसुगुप्त राक्षस का गुप्तचर था और राजनर्त्तकी अलका विषकन्या ! इस सत्य का उद्‌घाटन मैंने अपनी इच्छा से किया है और इस उद्‌घाटन के अनन्तर मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकूँगा ! मेरा मार्ग छोड़ दो । हटो ! तपोवन मेरी प्रतीक्षा कर रहा है । चन्द्रगुप्त ! अपने विश्वास-पात्र समाहर्त्ता वसुगुप्त का अन्तिम संस्कार और कौमुदी महोत्सव का आयोजन दोनों साथ-साथ करो और अपना राज्य सम्हालो ।

चन्द्रगुप्त : (**विह्वल स्वरों में**) आर्य चाणक्य ! महामंत्री चाणक्य ! चन्द्रगुप्त को तुम्हारी आवश्यकता है ! महामंत्री चाणक्य के बिना यह राज्य नष्ट हो जायेगा, चन्द्रगुप्त नष्ट हो जायेगा ! महामंत्री चाणक्य ! कौमुदी महोत्सव नहीं होगा ! (**चाणक्य के पीछे शीघ्रता से जाते हैं । उनकी ध्वनि क्रमशः क्षीण होती सुनायी पड़ती है ।**) कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !!... कौमुदी महोत्सव नहीं होगा !!!

भुवनेश्वर प्रसाद

स्ट्राइक

भुवनेश्वर प्रसाद

[जन्म : सन् १९१०, निधन : १९ ?]

रामकुमार वर्मा के साथ भुवनेश्वर को भी हिन्दी एकांकी का जन्मदाता माना जाता है। सच तो यह है कि सबसे पहले सफल एकांकी अपने ही लिखे। आपका जन्म शाहजहाँपुर में हुआ और वहीं आपकी शिक्षा भी हुई। आपने प्रारम्भ से ही विदेशी साहित्य और खास तौर से अंग्रेजी साहित्य का विशेष अध्ययन किया और अपनी रचनाओं में उसका पूरा-पूरा लाभ उठाया।

भुवनेश्वर की प्रतिभा जितनी मौलिक थी, उतनी ही निराली थी। वे अपने समय की समस्याओं के क्रान्तिकारी हल ढूँढ़ते थे और रूढ़ियों पर तीखा प्रहार करते थे। उनकी भाषा में जो ताज़गी है, वही उनके दृष्टिकोण में भी है। यही कारण है कि वे अपने समय के लेखकों में सबसे अलग और पराए-से लगते थे। उनकी प्रतिक्रियाएँ जिस वैचारिक स्तर पर होती थीं, उन तक पहुँचना सामान्य हिन्दी पाठक के लिए कठिन होता था। इसीलिए उनका कृतित्व कभी-कभी उपेक्षित भी हो जाता था और वादविवादों को जन्म दे देता था। पर भुवनेश्वर इस बात से विचलित नहीं हुए और अन्त तक डटकर अपने मन की बात कहते रहे। यही कारण है कि भुवनेश्वर के एकांकी नाटकों में बड़े साहसपूर्ण प्रयोग मिलते हैं। दूसरे लेखक जिन प्रयोगों की बात आज करने लगे हैं, भुवनेश्वर ने उनको वर्षों पहले परख लिया था।

अपने निरालेपन के कारण भुवनेश्वर का जीवन बड़े कष्ट में बीता। आर्थिक कष्ट तो था ही, साथ ही यह कष्ट भी था कि उनकी रचनाएँ बहुत कम लोगों को स्वीकार होती थीं। अपने अन्तिम दिनों में वे प्रयाग में

रहने लगे थे। उनकी मृत्यु के बारे में निश्चित जानकारी अभी तक नहीं मिल सकी है।

भुवनेश्वर का पहला एकांकी संग्रह 'कारवाँ' सन् १९३६ के आसपास प्रकाशित हुआ। हाल ही में उनके नाटकों का एक ताजा संग्रह लोक-भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ने प्रकाशित किया है।

स्ट्राइक

'स्ट्राइक' भुवनेश्वर के प्रारम्भिक एकांकियों में है। यह एकांकी भी 'हंस' के उस विशेषांक में सम्मिलित हुआ था जिसकी चर्चा भूमिका में की गई है। 'स्ट्राइक' एक प्रतीकात्मक नाटक है। लेखक ने जिस तरह पारिवारिक विषमता तथा स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को एक जटिल ताने-बाने में गूँथा है उससे नाटक की कथावस्तु बड़ी सघन हो गई है। लेखक बड़ी निर्भीकता से व्यक्ति और समाज के जीवन में फैली विषमता को देखता है और कदम-कदम पर पाश्चात्य के अनुकरण पर व्यंग्य-बाण बरसाता चलता है। समाज में समानता की स्थापना उसका उद्देश्य है। जब तक वह समानता स्थापित नहीं होती, तब तक न तो हमारे सामाजिक सम्बन्ध शान्तिपूर्ण बन सकते हैं, न पारिवारिक जीवन सुखी हो सकता है--लेखक का यही कहना है।

स्ट्राइक

पात्र :

पहला दृश्य

पुरुष (श्रीचन्द)

स्त्री

दूसरा दृश्य

तीन पुरुष

एक युवक

पुरुष (श्रीचन्द)

तीसरा दृश्य

पहले दृश्य का पुरुष

दूसरे दृश्य का युवक

पहला दृश्य

[एक मध्यवर्गीय बँगले में खाने का कमरा, जो बरामदे में एक तरफ परदे डालकर बना लिया गया है। एक बड़ा-सा साइड-टेबिल जिस पर चीनी के बरतन, प्लेट-प्याले, नुमायशी ढंग से रखे हैं; पास में एक छोटी मेज पर फॉर्क, क्वेकर ओट्स, पॉल्सन बटर और अचार के दो अमृतबान सजे हैं। खाने की मेज अण्डाकार है, जिसके चारों तरफ चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। दो पर एक स्त्री और एक पुरुष बैठे हैं; पुरुष-स्त्री कुछ बोलें तो पता चले, कम-से-कम दस मिनिट से खामोश तीसरे पहर की चाय पी जा रही है।]

स्त्री : (चाय का प्याला घुमाते हुए) तो सरदार साहब बहुत चौंके ?

पुरुष : (अनमना) हूँ. . . .

स्त्री : (कुछ कहने के लिए साँस भरकर रह जाती है)

पुरुष : तो आज नौकर दोनों छुट्टी ले गये हैं ?

स्त्री (दो घूँट चाय पीकर रूमाल से ओंठ पोंछती हुई) सरदार साहब की डायरेक्टरों में तो खूब चलती है. . . .

पुरुष : (हास्यापद उत्साह से) यह ! यही तो इन कम्बख्तों को मिटा देता है। यह समझते हैं कि बहुमत इन्हें गधे से बछड़ा बना देगा ? कम्बख्त यह नहीं समझते कि अब बहुमत के माने ही बदल गये हैं। बहुमत थोड़े-से बेजान, अधमरे केंचुओं का नाम थोड़े ही है ! वह शक्ति दुनियाँ को हिला देने वाली शक्ति का नाम है और वह हमेशा आदमी—एक आदमी में होती है।

[स्त्री चुपचाप चाय उंडेलती है और दूध डालकर ध्यान से प्याले

को देख रही है। पुरुष रोटी पर बेरहमी से मक्खन लगा रहा है और कुछ देर खामोशी-सी हो जाती है।]

पुरुष : सरदार साहब, राजा साहब, बाबू साहब, सबके साथ यही दिक्कत है। कम्बख्त जीवन की कला नहीं जानते; म्रियमाण-से निहत्थे पापियों की तरह ये मौत तक खिसकते जाते हैं। जब उन्होंने देखा कि मैं उनसे भीख नहीं माँगता, उनके तलवे नहीं सहलाता, मुँह नहीं बनाता, षड्यन्त्र नहीं करता तो मुंह बाकर रह गये; जी हाँ, मुँह बाकर रह गये ! **(प्याला रख कर हँसता है)** यह कुछ बूझते-समझते तो हैं नहीं। जब कभी इनके ठोकर लगती है, तो बस खड़े होकर मुँह बा देते हैं। **(आवाज धीमी करता है)** लेकिन कपड़ों के नीचे यह सब इज्जतदार मोटे घुड़-मुँह, गधे ! हाँ, व्यवस्थित समाज में इनका एक लाभ जरूर है---ये ठोकरें खूब झेल लेते हैं! डिविडेंड कम हुआ, इनके हाथ-पाँव फूल गये; किसी कॉलिज के चिबिल्ले ने किताबी अंग्रेजी में स्ट्राइक की धमकी दे दी इनके हाथ-पाँव फूल गये, बौखला गये। **(हाथ को नाटकीय ढंग से हिलाते हुए)** मैंने साफ ऐलान कर दिया कि मैं तीन साल तक डिविडेंड नहीं बाँटूंगा। अँगूठा कर लो मेरा ? **(भद्दी तौर से अँगूठा दिखाता है।)**

[स्त्री चाय खत्म करके घड़ी की तरफ देखती है और ओठों में कुछ फुसफुसाती है, पुरुष बेचारा क्या समझे ? वह एकाग्र खाता रहता है, कमरे में फिर स्तब्धता छा जाती है।]

पुरुष : (ऊबा-सा) तो आज नौकर ग़ायब ! मेम साहब ने चाय बनाई है, पर शाम को क्या होगा ? मेरी तो मीटिंग शायद आठ पर खत्म होगी।

स्त्री : (रूमाल से उँगलियाँ मलते हुए) मैं...मैं (सहसा) जा रही हूँ।

पुरुष : कहाँ जा रही हो ? कहाँ ?

स्त्री : (बाहर की तरफ रूमाल हिलाते हुए) वहाँ ?

पुरुष : (बाहर की तरफ देखता है) वहाँ ? बाज़ार, शॉपिंग के लिए ?

स्त्री : नहीं, मैं तो लखनऊ जा रही हूँ; आखिरी जी० आई० पी० से लौट आऊंगी।

पुरुष : (अपना आश्चर्य भरसक छिपाते हुए) लखनऊ, जी० आई०पी० आखिर क्यों ?

स्त्री : (चाय खत्म कर चुकी है) कुछ नहीं, ऐसे ही घूमने। सरदार साहब की बीवी हैं, मिसेज निहाल हैं, मैं हूँ, मिस मित्तर हैं—उन्हीं को कुछ काम है, न जाने रेडियो लेने जा रही हैं क्या ?

पुरुष : (उँगली पोंछ रहा है) तो यह कहो! (रुककर) लेकिन कार क्यों नहीं ले जातीं।

स्त्री : नहीं, कार——नहीं ज्यादा-से-ज्यादा जी० आई० पी० से लौट आयेंगे। वही शायद आखिरी गाड़ी है।

पुरुष : (जेब से सोने की जेब-घड़ी निकालकर और उसे वास्केट पर पोंछकर) तो जी० आई० पी० यहाँ आती है, १०-१५ पर, तुम यहाँ १०-२५ पर आ जाओगी। कार मैं पम्प पर छोड़ दूंगा—अरे मिलखीराम के पेट्रोल पम्प पर। खाने के लिए यह करना कि मैं कार में टिफ़िन कैरियर रख लूँगा, तुम स्टेशन से सालन वगैरा ले आना; न होगा रोटियाँ यहीं बन जाएँगीं। (जेब में घड़ी रख लेता है और जेबें टटोलकर सस्ता सिगरेट केस निकाल लेता है और एक सिगरेट जलाता है। धुँआँ छोड़ते हुए) अब सरदार साहब के मिजाज ठिकाने आ जाएगे। कोई उसूल नहीं, कोई हौसला नहीं। भला इसे जिंदगी कहते हैं ?

स्त्री : तो जी० आई० पी० यहाँ साढ़े दस पर आती है ?

पुरुष : (फिर घड़ी निकाल लेता है, फिर उसे पोंछता है।) नहीं १०-१५ पर। और जी०आई० पी० की गाड़ियाँ लेट नहीं होतीं

—यह ई० आई० आर० नहीं है। (जैसे कोई अपनी ही चीज बखान कर रहा हो) दुनियाँ का भविष्य उचित समय पर उचित काम करने वालों के हाथ में हैं—दुनियाँ की सारी दौलत, सारा आराम बस उसका है जो अपनी जगह पर कायम है और काम का जो छोटा हिस्सा उसका है उसे मशीन की तरह पूरा कर रहा है। अमरीका का एक बहुत बड़ा लेखक है बरनार्ड शॉ, उसने कहा है......

स्त्री : (सहसा ऊबी-सी) मिसेज़ निहाल ने कहा तो था कि वह अपनी कार भेजेंगी। तुम्हें मीटिंग में कब जाना है ?

पुरुष : (चौंककर घड़ी की तरफ देखता है) साढ़े चार ! लो तो मैं चला—(गुनगुनाता है) चार बजकर सत्रह—तीन या चार मिनट मुझे ड्यूक कम्पनी में लगेंगे; चार—इक्कीस—खैर तो चलो तुम्हें पिंडी के यहाँ छोड़ दूँगा; वहाँ से—या आओ निहाल के यहाँ तक, दो मिनट की ही तो बात है।

स्त्री : (अँगड़ाई लेते हुए) अच्छा ? (खड़ी हो जाती है) यह साड़ी पहने रहें या दूसरी पहनूँ...(मुड़कर साड़ी देख रही है।)

पुरुष : (सिगरेट दो-तीन बार चूसकर फेंकते हुए) जैसा तुम्हारा जी चाहे; लेकिन तुम्हें मेरे सर की कसम, बतला दो लखनऊ में क्या है ?

स्त्री : (बरबस मुस्कराती हुई) लखनऊ में ?—बहुत-सी चीजें—छोटा-बड़ा इमामबाड़ा, चिड़ियाघर, हजरतगंज, अमीना....

पुरुष : नहीं, मैं पूछता हूँ, आज शाम को कोई खास बात....

स्त्री : (जाते हुए) आज शाम को खास बात ? कोई खास बात नहीं है।

पुरुष : (जैसे एक बड़ी मुहिम के लिए तैयार होते हुए) यहाँ आओ, यहाँ बैठो, (स्त्री घूमकर खड़ी हो जाती है) बैठो, मैं देखता हूँ, तुम कुछ दिनों से ऐसी ही हो रही हो। मैं जानता हूँ, तुम्हारी

यहाँ तबीयत नहीं बहलती; पर छुट्टियों में निर्मल आ जायगा, मोनी भी शायद यहीं आवे। तुम्हें मालूम हुआ, मोनी अबकी बी० ए० में फर्स्ट रही। लेकिन हाँ, बताओ यह तुम्हें हुआ क्या है ?

स्त्री : होता क्या ? कुछ नहीं हुआ, तुम अगर मेरी तबीयत का एक खाका बनाओ लकीर वहाँ-वहाँ बिजली तक पहुँच जाय !

पुरुष : (उत्साहित होकर) हाँ, लेकिन फिर यह बेताबी क्यों हैं ? देखो आदमी के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि वह अपनी बची-खुची शक्ति किस तरह काम में ले आये। आदिम जंगली-पन से लेकर आज की सभ्यता तक जो कुछ भी आदमी ने अपने को दुखी या सुखी बनाने के लिए किया है, वह इस शक्ति को काम में लाने के लिए। फिर दुख या सुख तो इतनी ठोस चीजें हैं कि एक दिन तुम देखोगी कि यह शीशियों में बिका करेंगी, शीशियों में ! मुझे इन टिसुए बहाने वालों से नफरत है, सख्त नफरत ! यह सिर्फ हरैले ही नहीं हैं, यह तो अपनी हार के गीत गाते हैं, नारे लगाते हैं।

स्त्री : अच्छा उठो, फिर तुम मुझे कार पर न पहुँचाओगे ?

पुरुष : (फिर घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है) असम्भव ! तुम अब मिसेज़ निहाल का इन्तजार करो।

[पुरुष जल्दी से भीतर चला जाता है, स्त्री वहीं बाहर की तरफ घूमती हुई बैठती है। थोड़ी देर में पुरुष भीतर से आता है, बगल में पुराना फेल्ट हैट दाबे हाथ के छोटे डण्डे को रूमाल से पोंछ रहा है।]

पुरुष : १०-१५ पर तुम स्टेशन पर आ जाओगी, वहाँ से मिलखीराम तक का रास्ता है ५ मिनिट का; १०-२० यानी १०-३० तक तुम यहाँ होगी, यानी १०-४० तक हम-तुम यहीं इसी टेबिल पर डिनर के लिए बैठे होंगे ! मैं स्टेशन आ जाता लेकिन मिस

मित्तर---तुम व्यर्थ जलोगी। (भद्दी हँसी हँसता है, स्त्री पर जैसे इसका कोई असर नहीं होता) अच्छा, चीरियो !

[सीढ़ियों पर तेजी से उतरता हुआ जाता है। स्त्री वैसे ही बैठी रहती है, फिर अनमनी भीतर उठकर चल देती है। स्टेज पर एकबारगी अंधकार हो जाता है। बीच में दो बार रोशनी होती है जिसमें पूरे सीन में खाली मेज और कुर्सियाँ दिखाई देती हैं। घड़ी जिसमें पहले ८-३० बजा है फिर ९।]

दूसरा दृश्य

[एक मध्यमवर्गीय क्लब का कमरा, तेज तीखी रोशनी हो रही है। मेजों पर ताश और भरी हुई ऐश-ट्रे बिखरी हुई हैं, कुर्सियाँ भी अनेक चारों तरफ तितर-बितर पड़ी हैं। कोने में एक बड़ी-सी फ्रेंच विंडो (खिड़की) के सामने सोफों पर तीन आदमी बैठे हैं। सीन में सिर्फ उनकी पीठें दिखाई दे रही हैं। पास ही एक कुर्सी पर सामने की एक छोटी मेज पर सुरुचि से कपड़े पहने एक युवक बराबर ताश फेंट रहा है। खिड़की के फ्रेम में तारों से खिला हुआ आकाश तसवीर की तरह जड़ा हुआ है। दीवार की बड़ी घड़ी ८-४५ बजा रही है। कमरे में सब खामोश हैं; पर निस्तब्धता नहीं है।]

पहला आदमी : न मालूम मैं यह मनहूस ब्रिज का खेल क्यों खेलता हूँ ? (आवाज वृद्धि-सी है)

दूसरा : (जम्हाई लेता हुआ) क्या किया जाय, आओ कोई और झंडा ऊँचा करें।

तीसरा : ये लोग आते भी तो नहीं (कुर्सी के युवक की तरफ घूमकर) देखो जी, तुम मिश्रित समाज की चर्चा चलाओ. . . .

[दोनों आदमी घूमकर युवक की तरफ देखते हैं। तीनों आदमी मोटे, अधेड़, कीमती कपड़े पहने और अत्यन्त सन्तुष्ट हैं]

युवक : (झेंपता-सा) मैं कैसे चला सकता हूँ। हाँ, मेरी पत्नी आती तो मैं जरूर ऐसा करता; देखिए उन्हें. . . . .

[तीनों एकबारगी 'हूँ' करते और फिर मुड़के बैठ जाते हैं और खामोश हो जाते हैं। युवक फिर ताश फेंटने लगता है।]

पहला : (जेब से सिगरेट-केस निकलता है और फिर रख लेता है) भई, चलें, मुझे तो सुबह से ही काम है।

दूसरा : (मुड़कर घड़ी देखते हुए) यह श्रीचन्द बुत्ता दे गया !

पहला : नहीं भाई, कहीं फँस गया होगा। उसके तो मक्खी की तरह सौ आँखें हैं !

युवक : वह आएँगे जरूर, मेरी तो दावत कर गये हैं।

तीनों : (मुड़कर) अच्छा ? और पट्ठे की पत्नी आज है नहीं। (एक-दूसरे की ओर देखते हैं)

युवक : अच्छा ! मुझे मालूम होता तो मैं कभी प्रतीक्षा न करता।

पहला : इस श्रीचन्द को देखो, जब यह वकालत छोड़कर व्यापार में आ रहा था, मुझे इसकी सफलता की तनिक भी आशा न थी, पर देखो—आज वह एक कम्पनी का सर्वेसर्वा बन गया है। (हँसता है)

दूसरा : (जम्हाई लेता और अँगूठियों वाली उँगली से चुटकियाँ बजाता है।) मैं तो भाई दिन-ब-दिन मानता जाता हूँ कि भाग्य भी कोई चीज है।

[युवक ताश रखकर एकाग्र हो, इन लोगों की बातें सुनता है।]

तीसरा : (उठ खड़ा होता है) आओ भाई, चलो। आइए मिस्टर सहाय, आपको कार पर छोड़ आऊँ। घर तक....

पहला : बैठो न, श्रीचन्द आता ही होगा।

युवक : और आप से तो उन्होंने भी कार में छोड़ आने के लिए कहा था।

तीसरा : (बैठते हुए) हूँ, हूँ, तब तो रुकना ही पड़ेगा।

[युवक कोई भी बात शुरू करने का इरादा करता है।]

युवक : आज मेरठ षड्यन्त्र का मामला शुरू हो गया।

तीनों : क्या ? अच्छा !

]तीनों ऐसी बातों की तरफ से उदासीनता दिखलाना चाहते हैं। पर कुछ असफल-से हो रहे हैं।]

पहला : श्रीचन्द ने इनके बारे में खूब कहा !

[हँसता है। सब उसकी तरफ देखकर सुनना चाहते हैं]

पहला : (कोट का कॉलर ठीक करते हुए) मेरे साथ कमिश्नर से मिलने. . . .उन्होंने मेरठ की बात चलाई। आप छूटते ही हिन्दुस्तानी में बोले—अरे साहब, इनको तो ऐसे ही छोड़ देना चाहिए, यह तो हम लोगों के खिलौने हैं।

[तीनों फैशनेबल हँसी हँसते हैं, युवक भी उसमें शामिल होता है।]

दूसरा : हर देश, हर सरकार के सामने समस्या सिर्फ यही है कि किस तरह उसके कर कम-से-कम किये जा सकते हैं। आप कर कम कर दीजिए, प्रजा अपने-आप सम्पन्न होगी।

पहला : हम लोगों-सा कोई बेसरोकार आदमी रूस जाकर देखे कि इन शरीफों ने वहाँ क्या कर दिखाया है, कि दुनियाँ-भर को इन के सामने हेय समझते हैं।

तीसरा : यानी, खुद तक को !

[फिर तीनों ऊबी-सी हँसी हँसते हैं। बाहर कुछ खटका-सा होता है। सब लोग बाहर की तरफ देखते हैं। पहले सीन का परिचित पुरुष सन्तोष और लापरवाही से आता है।]

पुरुष : (अपना हैट और डंडा एक खाली मेज पर रखते हुए) तुम लोग सिर्फ इन्तजार कर रहे थे। ब्रिज खत्म कर दिया ?

दूसरा आदमी : (कमरे के बीच में आते हुए) आज सहाय फिर हार गये।

पुरुष : (हँसता हुआ) सहाय तुम बड़े हरैले हो !

[अब सब अपनी जगहों से उठकर कमरे के बीच में आ गये हैं ।]

पहला : जीत तो सब तुम्हारे हिस्से में पड़ी है ।

पुरुष : अरे भई, क्या जीत, क्या हार । यहाँ तो इसका कभी सपने में भी ख्याल नहीं करते । हम तो ईमानदारी से जीना जानते हैं । मैं फिर कहता हूँ, जीवन एक कला है और सबसे बड़ी कला !

तीसरा : (जम्हाई लेते हुए) चलो भई, बड़ी देर हो गई । (सब घड़ी की तरफ देखते हैं, पुरुष फिर अपनी सोने की घड़ी निकालता और उसे पोंछता है) चलो घर तक छोड़ना पड़ेगा ।

[तीनों भीतर जाकर अपना हैट लेते हैं, केवल युवक नंगे सिर है ।]

पहला : यह चौकीदार न जाने कहाँ मर जाता है !

दूसरा : मर जाता है ? क्या खूब ! नई पत्नी घर लाया है । जरा सोचो, नई पत्नी ।

[सब जवानों की तरह हँसते हैं, सिर्फ युवक कुछ झेंपा- झेंपा-सा है और सबसे पीछे बाहर जाता है । बाहर बरामदे से दो या तीन बार आवाज आती है, "चौकीदार !"; फिर मोटरों के स्टार्ट होने की और फिर खामोशी । फिर स्टेज पर अँधेरा हो जाता है, पर बीच में दो या तीन बार रोशनी होती है । किसानों का-सा बुझा हुआ चेहरा लिये एक चौकीदार मेज झाड़ता और जली हुई सिगरेटें बीनता हुआ दिखलाई देता है ।]

तीसरा दृश्य

[पहले दृश्य के कमरे का बरामदा, लम्बा और साधारण से जरा ऊँचा । खम्भों के पास बड़े-बड़े पाम[1] रखे हैं, खम्भों पर बेलें भी फैली

---

[1] ताल-पौधे ।

हैं, दरवाजे सब बन्द हैं, जिनके सामने तीन-चार बेमेल कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं, सीढ़ियों पर एक बड़ा झबरा कुत्ता लेटा है। दृश्य के शुरू में कोई आदमी नहीं दिखलाई देता है, पर तत्काल ही गृहस्वामी और युवक जो क्लब से आ रहे हैं, सीढ़ियों पर चढ़ते दिखलाई देते हैं। कुत्ता सिर उठाकर धीमी जानकारी से गुर्राता है, फिर पूँछ हिलाता हुआ पीछे-पीछे आकर बरामदे में लेट जाता है। स्टेज पर कम-से-कम रोशनी है।]

पुरुष : (मेहनत से चढ़ते हुए) तो यह कहिए ? रुकिए.......
(जेब टटोलता है)।

[पुरुष एकबारगी सीढ़ियों से उतरकर बंगले के पीछे की तरफ जाता है। युवक वहीं खड़ा होकर उसकी ओर उत्सुकता से देखकर मुस्करा रहा है। शीघ्र वह फिर वापस आ जाता है और उतावली से जेब टटोलता है।]

पुरुष : अब यह नहीं पता, मेरी पत्नी चाभी मुझे दे गई या कहीं रख गई। नौकर, मैं कहता हूँ कि मेरी जिन्दगी में अगर कोई सुर बेसुरा है तो यह नौकर। छुट्टी-छुट्टी-छुट्टी। रोज-रोज इनको छुट्टी चाहिए, कम्बख्त यह नहीं जानते.....

[युवक सहसा एक कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। पुरुष स्विच टटोलकर बत्ती जला देता है और फिर दूसरी कुर्सी पर ठीक युवक के सामने बैठ जाता है]

पुरुष : (एकबारगी हँसता हुआ) अगर स्विच कमरे के भीतर होता तो लुत्फ़ आ जाता।

युवक : खैर, यहाँ भी तो आराम से बैठे हैं।

पुरुष : हाँ, हाँ, ६-३० बजा है, (घड़ी निकालता है और उसे पोंछता हैं) ६-२७, खैर, मेरी पत्नी यहाँ १०-३० तक आ जायगी। खाना वह साथ ही लायगी। (जम्हाई लेता है) और कहिए।

युवक : (उत्साह से) मुझे कोठी तो खैर मिल गई....

पुरुष : (जूते को फटफटाते) खैर, कोठी-ओठी तो हैं, आपने यह नहीं बताया कि आपने शादी क्यों नहीं की ?

युवक : (कठिनता से) नहीं ही की—नहीं का कोई कारण तो है नहीं ।

पुरुष : (मुस्कराता है) मैं सच कहता हूँ, मैं आप जवान आदमियों को देखकर कई बार बहुत खुश होता हूँ !

युवक : (जैसे इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं) जी हाँ । (हँसता है ।)

पुरुष : (सँभल कर) नहीं । आपसे दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ । आप लोग हमसे एक पीढ़ी आगे हैं, पर अगर आप से हिसाब माँगा जाय तो आपके पास क्या है ? आप मुझे बताइए, आप लोगों ने दुनियाँ को क्या दिया ? मैं वैज्ञानिक आविष्कारों की बात नहीं करता, उसकी तो एक पूरी स्कीम[१] है, जिसमें पीढ़ियों और समाज का कोई दखल ही नहीं है, वह तो प्रकृति धीरे-धीरे अपने आपको पूरा कर रही है । मैं जानता हूँ, आप मेरे विचारों को दकियानूसी समझकर मन-ही-मन हँस रहे हैं, लेकिन भाई-जान, आपने अपने नये विचारों से कौन-से तीर मारे हैं ? आप बताइए ।

युवक : जिक्र तो शादी का था ?

पुरुष : हाँ, हाँ शादी को ही लीजिए । आप मानते हैं कि हर एक आदमी को जाति की जिन्दगी में दाखिल होना जरूरी है । जैसा मैं प्रायः कहता हूँ कि दुनियाँ साझे की दुकान है और हर एक बालिग आदमी का कर्त्तव्य है कि उसका साझेदार हो । अगर इसके लिए कोशिश में आप अपनी जान नहीं खपा देते, तो आप मनुष्य कहलाने का कोई हक नहीं रखते । (उत्तेजित होकर) मैं कहता हूँ, सब पुस्तकें गलत हैं । सब झूठी हैं ।

---

१. योजना

युवक : मैंने तो शादी नहीं की—नहीं की कि मैं शायद कभी भी औरत का दिमाग. . . . .

पुरुष : भाईजान, शादी एक गहरी समस्या है, आप उसके साथ खिल-वाड़ नहीं कर सकते। मैं पूछता हूँ, आप एक फैक्टरी में तो हर तरह का विज्ञान, कानून, विशिष्ट ज्ञान लगाते हैं। फिर क्या कारण है कि जीवन को ऐसे परमात्मा के भरोसे छोड़ दिया जाए कि उसमें आदमी की सस्ती से सस्ती और निकम्मी से निकम्मी शक्तियाँ ही सिर्फ काम में लाई जायँ। आप कहते हैं, मैं औरत को समझ नहीं पाता। जनाब, यह सब कोरी बातें हैं, बातें समझने की क्या जरूरत है ? मशीन की एक पुली दूसरी पुली को नापने, जोखने, समझने नहीं जाती। स्त्री-पुरुष तो जीवन की मशीन के दो पुरजे हैं—दो।

युवक : यह फैक्ट्री और मशीन की एक ही रही।

पुरुष : नहीं साहब आप मुझे देखिए। मेरी पहली पत्नी थी। कम्बख को हमेशा मुझसे शिकायत रही, लेकिन उसकी बीमारी में जब मैं प्रतिक्षण उसके सिरहाने रहा तो मेरा नाम रटती हुई मरी। अब यह मेरी दूसरी पत्नी है। हमारे बच्चे नहीं, यानी इस पत्नी के। हम लोग क्लबों में साथ-साथ नहीं जाते, हफ्ते में एक बार सिनेमा देखते हैं, पहाड़-जंगल जाने का मेरे पास वक्त नहीं, पर हम लोग बेहद खुश हैं—कभी हममें कोई भेद-भाव हुआ नहीं। मैं कहना चाहता था कि हम दोनों ने अपनी-अपनी जगह को समझ लिया है और वहाँ हम लोग अडिग हैं। वह बीमार पड़ती है, मैं डाक्टरों से घर नहीं भर देता; मैं बीमार पड़ता वह रोती-धोती नहीं। मैं क्या कहूँ ? मैं जानता हूँ, इस वक्त मेरी पत्नी स्टेशन के बुकस्टाल[1] पर कौन-सी किताब देख रही है। मैं जानता हूँ, वह स्टेशन पर गाड़ी से दस मिनट पहले पहुँच जाती है।

---

१. किताबों की दुकान।

युवक : पर मान लीजिए. मशीन का एक पुरजा बिगड़ जाय ?

पुरुष : (हँसता हुआ) तो पुरजा बदल डालिए, स्वयं बदल जाइए। किताबें ? मैं आपको बताऊँगा किताबें क्या हैं ? मैंने रुई के व्यापार पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी। मैंने वे सब बातें लिखीं जो लोग रोज सोचते थे और जिनकी चर्चा करते रहते थे। नतीजा यह हुआ कि किताब की धूम मच गई, पर उन्हीं उसूलों को, जिनकी मैंने वकालत की, काम में लाने की बात मैं स्वप्न में भी नहीं सोचता।

[पुरुष सहसा यह आशा करके कि युवक कुछ कहेगा, चुप हो जाता है। युवक सिर झुकाये हुए खामोश है। कुत्ता इतना शोर-गुल सुनकर पास आकर खड़ा हो जाता है। कुछ देर के लिए खामोशी हो जाती है।]

युवक : (**सिर उठाकर**) फैक्ट्री, पुरजा, वाकई यह खूब रही।

[पुरुष कुछ कहने के लिए तैयार होता है पर सहसा फाटक खटकता है और कुत्ता भोंकते हुए दौड़ता है। वह कुत्ते को बुलाता है और बरामदे के किनारे खड़े होकर जोर से पुकारता है--कौन है ? और फिर कुत्ते को पुकारता है। एक चपरासी हाथ में बाइसिकल थामे आता है और सलाम करके जेब में से एक लिफाफा निकाल कर देता है, और फिर सलाम करके खड़ा हो जाता है।]

पुरुष : क्या है, तुम कौन हो ? (**लिफाफा लेकर अपनी घड़ी की चैन के चाकू से उसे खोलता है--रोशनी की तरफ जाता है**)एँ !

चपरासी : मैं निहाल साहब का ड्राइवर हूँ, मेम साहब ने कहलाया है कि वह कल आएँगी।

पुरुष : (**खत पढ़ना छोड़ कर**)कल आएँगी ! ऐं, तुझे क्या मालूम ?...

चपरासी : सब मेम साहब वहाँ रहेंगे, मोटर वापस कर दी। मुझसे कहा.....

पुरुष : (टहलते हुए उतावली से) और खाना, मकान. . . .और कार मेरी मिलखीराम के पम्प पर पड़ी है !

[चपरासी फिर सलाम करता है और चल देता है, थोड़ी दूर चलके कहता है]

चपरासी : हुजूर, आपका कुत्ता बड़ा पानीदार है। अंग्रेजी है ?

पुरुष : (हताश भाव से) आखिर—आखिर, हूँ. . . .

युवक : (उठते हुए) आइए, मेरे होटल में आइए, आपकी फैक्ट्री में तो आज स्ट्राइक हो गई।

पुरुष : मैं कहता हूँ मेरी कार मिलखीराम के पम्प पर खड़ी है—

[फिर खत बत्ती के नीचे ले जाकर पढ़ता है।]

उपेन्द्रनाथ अश्क

लक्ष्मी का स्वागत

उपेन्द्रनाथ अश्क

[जन्म सन् : १९१०]

बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न उपेन्द्रनाथ अश्क ने उपन्यासकार और नाटककार के रूप में बड़ी ख्याति अर्जित की है। आपका जन्म जालंधर में हुआ और आपकी उच्चशिक्षा लाहौर में। बी० ए० और एल-एल० बी० करने के बाद आपने कई साहित्यिक पत्रों में काम किया। और फिर आप आकाशवाणी में नाट्य-लेखक के रूप में काम करते रहे। देश की आजादी के कुछ पहले आप फिल्म-जगत में बम्बई चले गए और उन्हीं दिनों आपने अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'गिरती दीवारें' पूरा किया। १९४८ में आप इलाहाबाद आकर बस गए और तब से वहीं स्वतन्त्र लेखक के रूप में साहित्य-सृजन करते हैं।

अश्कजी के अब तक ५० से ऊपर ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इनमें कविता, उपन्यास, कहानी-संग्रह, पूर्णाकार नाटक, संस्मरण और रेखा-चित्रों के अतिरिक्त एकांकी-संग्रह भी शामिल हैं। शुरू के दिनों में आप उर्दू में लिखते थे, पर प्रेमचन्दजी की प्रेरणा से शीघ्र ही हिन्दी में लिखने लग गए। मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ चित्रण के लिए आपका विशेष आग्रह रहता है। आपको अनेक संस्थाओं से पुरस्कार मिल चुके हैं जिनमें आठ हजार रुपए का 'सोवियत-भूमि नेहरू पुरस्कार' भी शामिल है।

एकांकी के क्षेत्र में भी अश्कजी ने महत्त्वपूर्ण सफलता पाई है। 'हंस' के जिस विशेषांक की चर्चा हमने भूमिका में की है उसमें अश्कजी का एकांकी भी प्रकाशित हुआ था। उनके कुछ एकांकी रेडियो के लिए भी लिखे गए, और उनमें से कुछ को आपने बाद में पूर्णाकार नाटक का भी रूप दिया। इलाहाबाद के हिन्दी रंगमंच के विकास में आपने प्रचुर योगदान दिया है। अब आप अधिकतर पूर्णाकार नाटक ही लिखते हैं।

लक्ष्मी का स्वागत

'लक्ष्मी का स्वागत' कदाचित् अश्कजी का सबसे अधिक प्रसिद्ध एकांकी है। इसका प्रथम प्रकाशन 'हंस' के विशेषांक में हुआ था। तब से अब तक यह एकांकी अनगिनत एकांकी-संग्रहों में स्थान पा चुका है। साथ ही, यह एकांकी शायद अश्कजी का सबसे छोटा एकांकी है। छोटे आकार के कारण इसकी कथावस्तु बड़ी सघन हो गई है और उसमें संक्षिप्ति का वह दुर्लभ गुण आ गया है जो श्रेष्ठ एकांकी की पहचान है। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद अपने बालक की बीमारी से परेशान पति के सामने जब उसके अभिभावक दुबारा विवाह की तैयारी करते दीखते हैं, तो मन अपने आप उनके संकुचित दृष्टिकोण पर क्षुब्ध हो जाता है। और जब एकांकी के चरम-बिन्दु पर एक ओर सगुन लिया जा रहा है, और दूसरी ओर बालक दम तोड़ देता है, तो मन झनझना उठता है, और क्षोभ के स्थान पर एक तीखी करुणा का भाव जाग उठता है। एक विषम परिस्थिति को लेकर उसके सहज विकास से मर्म-स्पर्श करने में यह एकांकी इतना सफल हुआ है कि वह मन पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाता है।

लक्ष्मी का स्वागत

पात्र :

१. रोशन
२. सुरेन्द्र
३. भाभी
४. अरुण
५. डाक्टर
६. पिता
७. माँ

स्थान :

जालन्धर के एक निम्न-मध्यवर्गीय मोहल्ले में एक मकान का दालान ।

समय :

नौ-दस बजे सुबह ।

[दालान में सामने की दीवार से मेज़ लगी है, जिसके इस ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है। मेज़ पर बच्चों की किताबें ब्रिखरी पड़ी हैं। दीवार के दायें कोने में एक खिड़की है, जिस पर मामूली छींट का पर्दा लगा है। बायें कोने में एक दरवाज़ा है, जो सीढ़ियों में खुलता है। दायीं दीवार में एक दरवाजा है, जो कमरे में खुलता है। जहाँ इस वक्त रोशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम की सस्ती तसवीरें कीलों से जड़ी हुई हैं। छत पर काग़ज़ का एक पुराना फ़ानूस लटक रहा है।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की से बाहर की तरफ देख रहा है। बाहर मूसलधार वर्षा हो रही है। हवा की साँय-साँय और वर्षा के थपेड़े सुनाई देते हैं।

कुछ क्षण बाद वह खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है, फिर जाकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है और पर्दा हटाकर बाहर देखता है।

बीमार के कमरे में रोशनलाल प्रवेश करता है।

रोशन : (दरवाजे को धीरे-से बन्द करके) डाक्टर अभी नहीं आया?

सुरेन्द्र : नहीं।

रोशन : वर्षा हो रही है।

सुरेन्द्र : मूसलाधार! जल-थल एक हो रहे हैं।

रोशन : शायद ओले पड़ रहे हैं।

सुरेन्द्र : हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं।

रोशन : भाषी पहुँच गया होगा?

सुरेन्द्र : हाँ, पहुँच ही गया होगा। यह वर्षा और ओले! नदियाँ बह रही होंगी बाज़ारों में।

रोशन : पर अब तक आ जाना चाहिए था उन्हें ।

[स्वयं बढ़कर, खिड़की का पर्दा हटाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है। घुटे-घुटे स्वर में] अरुण की तबियत गिर रही है ।

सुरेन्द्र : (चुप)

रोशन : उसकी साँस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है, उसका गला जैसे बन्द होता जा रहा है। उसकी आँखें खुली हैं, पर वह कुछ कह नहीं सकता । बेहोश-सा, असहाय-सा, चुपचाप टुकुर-टुकुर ताक रहा है। आँखें लाल और शरीर गर्म । सुरेन्द्र, जब वह साँस लेता है तो उसे बड़ा ही कष्ट होता है। (दीर्घ निःवास छोड़ता है) न जाने क्या होने को है, सुरेन्द्र !

सुरेन्द्र : हौसला करो ! अभी डाक्टर आ जायगा । देखो, दरवाज़े पर किसी ने दस्तक दी है।

[दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की साँय-साँय]

रोशन : नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र : (सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी ।

[रोशन बढ़कर खिड़की से देखता है, फिर वापस आ जाता है।]

रोशन : सामने के मकान का दरवाज़ा खटखटाया जा रहा है।

[बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये, छत में हिलते हुए फानूस को देख रहा है।]

रोशन : (घूमते हुए जैसे अपने आप) यह मामूली बुख़ार नहीं । गले की यह तकलीफ़ साधारण नहीं। (सहसा सुरेन्द्र के पास रुककर) मेरा तो दिल डर रहा है, सुरेन्द्र, कहीं अपनी माँ की तरह अरुण भी तो मुझे धोखा न दे जायगा ? (गला भर आता है) तुमने उसे नहीं देखा, साँस लेने में उसे कितना कष्ट हो रहा है !

(हवा की साँय-साँय और वर्षा के थपेड़े)—यह वर्षा,

यह आँधी, ये मेरे मन में हौल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है। प्रकृति का यह भयानक खेल, मौत की ये आवाज़ें. . . . .

[बिजली जोर से कड़क उठती है। बादल गरजते हैं और मकानों के किवाड़ खड़खड़ा उठते हैं।]

माँ : (रसोई से) रोशी, दरवाज़ा खोल आओ। देखो शायद डाक्टर आया है।

[रोशन सुरेन्द्र की ओर देखता है]

सुरेन्द्र : मैं जाता हूँ अभी।

[तेजी से जाता है। रोशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भाषी प्रवेश करते हैं। भाषी के हाथ में इन्क्जेशन का सामान है।]

डाक्टर : क्या हाल है बच्चे का ?

[बरसाती उतारकर खूँटी पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोंछता है।]

रोशन : आपको भाषी ने बताया होगा डाक्टर साहब। मेरा तो जैसे हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे कुछ बुखार हुआ, साँस कष्ट से आने लगी। लेकिन आज तो वह अचेत-सा पड़ा है, जैसे अन्तिम साँसों को जाने से रोक रखने की मजबूर कोशिश कर रहा हो।

डाक्टर : चलो, देखता हूँ।

[सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाजे के खटखटाने की आवाज आती है। माँ तेज़ी से प्रवेश करती है।]

माँ : भाषी ! भाषी ! (**बीमार** के **कमरे से भाषी आता है**)

माँ : देखो भाषी, बाहर कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है ? (**आँखों में चमक आ जाती है**।) मेरा तो ख्याल है, वे ही लोग आये

हैं। मैंने रसोईघर की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिये और बरसातियाँ पहने.....

भाषी : वे ही कौन ?

माँ : वे ही, जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे। बड़े भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है। इतनी वर्षा में भी....

[ज़ोर-ज़ोर से कुण्डी खटखटाने की आवाज़। भाषी भागकर जाता है, माँ खिड़की में जा खड़ी होती है। बीमार के कमरे का दरवाज़ा खुलता है। सुरेन्द्र तेज़ी से प्रवेश करता है।]

सुरेन्द्र : भाषी कहाँ है ?

माँ : बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

[सुरेन्द्र फिर तेज़ी से वापिस चला जाता है। माँ एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झाँकती है, फिर खुश-खुश कमरे में टहलती है। भाषी प्रवेश करता है।]

माँ : कौन हैं ?

भाषी : शायद वे ही हैं। नीचे बैठा आया हूँ, पिताजी के पास। तुम चलो।

माँ : क्यों ?

भाषी : उनके साथ एक औरत भी है।

[माँ जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाज़ा ज़रा-सा खोलकर देखता है और आवाज देता है।]

सुरेन्द्र : भाषी !

भाषी : हाँ !

सुरेन्द्र : इधर आओ।

[भाषी कमरे में चला जाता है। कुछ क्षण के लिए मौन छा जाता है। केवल बाहर मेंह बरसने और हवा के थपेड़ों से किवाड़ों के खड़खड़ाने का शोर कमरे में आता है ; हवा से फ़ानूस सरसराता है। कुछ क्षण बाद डाक्टर, सुरेन्द्र, रोशन और भाषी बाहर आते हैं।]

रोशन : अब बताइये डाक्टर साहब।

डाक्टर : (अत्यधिक गम्भीरता से) बच्चे की हालत नाजुक है।

रोशन : बहुत नाजुक है ?

डाक्टर : हाँ !

रोशन : कुछ नहीं हो सकता ?

डाक्टर : भगवान के घर कुछ कमी नहीं, पर आपने बहुत देर कर दी। डिप्थीरिया में फौरन डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रोशन : हमें मालूम ही नहीं हुआ डाक्टर साहब। कल साँझ को इसे बुखार हो आया, गले में भी तकलीफ महसूस हुई। मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाज़ार में हैं—उन्होंने गले में आयोडीन-ग्लिसरीन पेण्ट कर दी और फीवर-मिक्स्चर बना दिया। दो खूराकें दीं, इसकी हालत तो पहले से भी ख़राब हो गई। शाम को यह कुछ अचेत-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नहीं, तब रात को भाषी को भेजा, फिर भी आप नहीं मिले। झड़ी लग गई—ओले, आँधी और झक्कड़। जैसे प्रलय के बाँध टूट गये हों।

[बाहर हवा की साँय-साँय सुनाई देती है। डाक्टर सिर नीचा किये खड़ा है। रोशन उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर ताक रहा है। सुरेन्द्र मेज़ के एक कोने पर बैठा छत की ओर ज़ोर-ज़ोर से हिलते फ़ानूस को देख रहा है।]

डाक्टर : (सिर उठाता है) मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भाषी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान ले आया था और मेरा ख्याल ठीक निकला। भाषी को मेरे साथ भेज दो। मैं इसे नुस्खा लिख देता हूँ, यहीं बाज़ार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद गले में दवाई की दो-चार बूंदें, और एक घण्टे में मुझे सूचित करना। यदि एक घण्टे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और दे जाऊँगा। कोई दूसरा इलाज भी तो नहीं।

रोशन : (आवाज भर आती है।) डाक्टर साहब !

डाक्टर : घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी देखभाल करो, शायद. . . . .

रोशन : मैं अपनी ओर से कोई कसर न उठा रखूँगा डाक्टर साहब। सुरेन्द्र, देखो, तुम मेरे पास रहना। जाना नहीं। यह घर इस बच्चे के लिए वीराना है। ये लोग उसकी जिन्दगी नहीं चाहते। बड़ा रिश्ता पाने के रास्ते में इसे रोडा समझते हैं। इसकी मौत चाहते हैं।

सुरेन्द्र : क्या कह रहे हो रोशन ?

डाक्टर : रोशनलाल ?

रोशन : आप नहीं जानते डाक्टर साहब ! ये सब लोग पत्थरदिल हैं, आपको मालूम नहीं। इधर मैं अपनी पत्नी का दाह-कर्म करके लौटा था, उधर ये लोग दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे।

सुरेन्द्र : यह तो दुनिया की रीत है भाई !

रोशन : दुनिया की रीत. . निर्मम,. . . .क्रूर ! नहीं जानती कि जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है—किसी के लाड़-प्यार में पली होती है, फिर (डाक्टर को जाने के लिए उद्यत देखकर) आप जा रहे हैं डाक्टर साहब ! (भाषी से) देखो भाषी, जल्दी आना। बस, जैसे यहीं खड़े हो।

[डाक्टर साहब और भाषी चले जाते हैं]

रोशन : सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की तरह दग़ा दे जायेगा ! मैं तो इसे देखकर सरला का दुख भूल चुका था, लेकिन अब, अब.....

[हाथों से चेहरा छिपा लेता है]

सुरेन्द्र : (उसे धकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो। उसके घर में क्या कमी है ? वह चाहे तो मुर्दों में जान आ जाय ! मरणासन्न उठ खड़े हों !

रोशन : (भर्राए गले से) मुझे उस पर कोई विश्वास नहीं रहा। उसका कोई भरोसा नहीं—क्रूर, और निर्दयी ! उसका काम सताये हुओं को और सताना है; जले हुओं को और जलाना है।

सुरेन्द्र : दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता हूँ, भाषी अभी क्यों नहीं आया।

[उसे दरवाज़े के अन्दर धकेलकर मुड़ता है। दाईं ओर के दरवाज़े से माँ दाख़िल होती है।]

माँ : किधर चले ?

सुरेन्द्र : जरा भाषी को देखने जा रहा था।

माँ : क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र : उसकी हालत ख़राब हो रही है।

माँ : हमने तो बाबा बोलना ही छोड़ दिया। ये डाक्टर जो न करें, थोड़ा है। बहू के मामले में भी तो यही बात हुई थी। अच्छी-भली हकीम की दवा चल रही थी, आराम हो रहा था। जिगर का बुख़ार ही तो था, दो-दो बरस भी रहता है; पर यह डाक्टर को लाये बिना न माना। और उन्होंने दे दिया दिक़ का फ़तवा। हमने तो भाई इसीलिए कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है। आख़िर मैंने भी तो पाँच-पाँच बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डाक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी। क्या बताया डाक्टर ने ?

सुरेन्द्र : डिपथीरिया !

माँ : क्या.....?

सुरेन्द्र : बड़ी भयानक बीमारी है माँ जी ! अच्छा-भला आदमी चन्द घण्टों के अन्दर ख़त्म हो जाता है।

माँ : राम-राम, तुम लोगों ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला ! उसे ज़रा बुखार है, छाती जम गई होगी, बस मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, पर मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न ! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र : नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है। आपसे ज्यादा वह किसे प्यारा होगा ?

[चलने को उद्यत होता है।]

माँ : सुनो !

[सुरेन्द्र रुक जाता है।]

माँ : मैं तुमसे एक बात करने आई थी। तुम उसके मित्र हो न। उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र : कहिए।

माँ : आज वे फिर आये हैं।

सुरेन्द्र : वे कौन ?

माँ : सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रौशी के लिए अपनी लड़की का शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं। सामने ही न आया। हार कर बचारे चले गए। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र : माँ जी.....

माँ : तुम जानते हो बच्चा, दुनिया-जहान का यह कायदा है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। राम-

प्रताप ही को देख लो, अभी दाह-कर्म-संस्कार के बाद नहाकर साफ़ा भी न निचोड़ा था कि नकोदर वालों ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद ब्याह हो गया और अब तो सुनते हैं, बच्चा भी होने वाला है।

सुरेन्द्र : माँ जी, रामप्रताप और रोशन में कुछ फर्क है।

माँ : यही न कि वह माँ-बाप का आज्ञाकारी है, और यह पढ़-लिखकर हमारी बात काटना सीख गया है। बेटा, अभी तो चार नाते आते हैं, फिर देर हो गई तो इधर कोई मुँह भी न करेगा। लोग सौ-बातें बनायेंगे, सौ-सौ लांछन लगायेंगे और फिर कौन ऐसा क्वाँरा है. . . . .

सुरेन्द्र : माँ जी, तुम्हारा रोशन बिन-ब्याहा नहीं रहेगा, इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ।

माँ : यह ठीक है बेटा, पर अब ये भले आदमी मिलते हैं। घर अच्छा है, लड़की अच्छी है, सुशीला है, सुन्दर है, पढ़ी-लिखी है; और सबसे बढ़कर यह है कि ये लोग बड़े अच्छे हैं। लड़की की बड़ी बहन से अभी मैंने बातें की हैं। ऐसी सलीक़े वाली है कि क्या कहूँ। बोलती है तो मुँह से फूल झड़ते हैं। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है, वह आप कैसे न अच्छी होगी ?

सुरेन्द्र : माँ जी, अरुण की हालत नाजुक है। जाकर देखो तो मालूम हो।

माँ : बेटा, अब ये भी तो इतनी दूर से आये हैं। इस आँधी और तूफ़ान में ! कैसे इन्हें निराश लौटा दें ?

सुरेन्द्र : तो आखिर आप मुझसे क्या चाहती हैं ?

माँ : तुम्हारा वह दोस्त है, उससे जाकर कहो कि जरा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हों उन्हें बता दे। इतने में लड़के के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र : मुझसे यह नहीं हो सकता माँ जी ! बच्चे की हालत ठीक नहीं; बल्कि चिन्ताजनक है। आप नहीं जानतीं वह उसे कितना प्यार

करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान उसी में सिमट आया है। और इस वक्त जब बच्चे की हालत नाजुक है, मैं उससे यह सब कैसे कहूँ ?

[बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। रोशन प्रवेश करता है। बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आँखें फटी-फटी-सी]

रोशन : सुरेन्द्र तुम अभी यहीं खड़े हो ? भगवान के लिए जाओ, जल्दी जाओ ! मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छाता ले जाओ, देखो भाषी अभी आया क्यों नहीं ? अरुण तो. . . .

भाषी : (सीढ़ियों से) मैं आ गया भाई साहब !

[भाषी दवाई की शीशी लिये हुये आता है। सुरेन्द्र और भाषी बीमार के कमरे में जाते हैं। माँ रोशन के समीप आती है।]

माँ : क्या बात है, घबराये हुए क्यों हो ?

रोशन : माँ, उसे डिपथीरिया हो गया है।

माँ : मुझे सुरेन्द्र ने बताया। [असन्तोष से सिर हिलाकर] तुम लोगों ने मिल-मिला कर. . . . .

रोशन : क्या कह रही हो ? तुम्हें अगर खुद किसी बात का पता नहीं तो दूसरों को तो कुछ करने दो।

माँ : चलो, मैं चलकर देखती हूँ।

[बढ़ती है।]

रोशन : (रास्ता रोकता है) नहीं, तुम मत जाओ। उसे बहुत तकलीफ है, उसे साँस मुश्किल से आती है, उसका दम उखड़ रहा है, तुम कोई घुट्टी-वुट्टी की बात करोगी।

[जाना चाहता है।]

माँ : सुनो !

[रोशन मुड़ता है। माँ असमंजस में है।]

रोशन : कहो !

माँ : (चुप)

रोशन : जल्दी कहो, मुझें जाना है।

माँ : वे फिर आये हैं।

रोशन : वे कौन ?

माँ : वे ही सियालकोट वाले !

रोशन : (क्रोध से) उनसे कहो, जहाँ से आये हैं, वहीं चले जायें।

माँ : रोशी !

रोशन : मैं नहीं जानता, मैं पागल हूँ या आप ! क्या आप लोग मेरी सूरत नहीं देखते ? क्या आपको इस पर कुछ लिखा दिखाई नहीं देता ? शादी, शादी, शादी ! क्या शादी ही दुनिया में सब कुछ है ? घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी की सूझ रही है ! आखिर आप लोगों को हो क्या गया है ? क्या वह मेरी पत्नी न थी ? क्या वह. . . .

माँ : शोर मत मचाओ ! हम तुम्हारे ही फ़ायदे की बात कर रहे हैं, रामप्रताप. . . .

रोशन : (चीख कर) तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो ! अनपढ़, अशिक्षित, गँवार ! उसके दिल कहाँ है ? महसूस करने का माद्दा कहाँ है ? वह जानवर है।

माँ : तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था. . . .

रोशन : वे. . .माँ जाओ, मैं क्या कहने लगा था।

[तेज़ी से मुड़कर कमरे में चला जाता है, दरवाजा खट से बन्द कर लेता है। हाथ में हुक्का लिये हुए, खँखारते-खँखारते रोशन के पिता प्रवेश करते हैं।]

पिता : क्या कहता है रोशन ?

माँ : वह तो बात भी नहीं सुनता, जाने बच्चे की तबियत बहुत खराब है।

पिता : (खँखारकर) एक दिन में ही इतनी क्या खराब हो गई ? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाजी है।

[जोर से आवाज़ देता है]

—रोशी, रोशी !

[खिड़कियों पर वायु के थपेड़ों की आवाज़]

—रोशी, रोशी !

[फिर आवाज़ देता है]

रोशन : (अत्यन्त थके स्वर से) धीरे बोलें आप, क्या शोर मचा रहे हैं ?

पिता : इधर आओ !

रोशन : मेरे पास वक्त नहीं !

पिता : (चीखकर) वक्त नहीं !

रोशन : धीरे बोलिए आप !

पिता : मैं कहता हूँ, वे इतनी दूर से आये हैं, तुम्हें देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे जरा एक-दो मिनट बात कर लो।

रोशन : मैं नहीं जा सकता।

पिता : नहीं जा सकता ?

रोशन : नहीं जा सकता !

पिता : तो मैं शगुन ले रहा हूँ ! इस वर्षा, आँधी और तूफ़ान में मैं उन्हें अपने घर से निराश नहीं लौटा सकता। घर आई लक्ष्मी का निरादर नहीं कर सकता।

[रोने की तरह रोशन हँसता है।]

रोशन : हाँ-हाँ, आप जाइए, लक्ष्मी का स्वागत कीजिए।

[खट से दरवाजा बन्द कर लेता है।

पिता : (रोशन की माँ से) इस एक महीने में हमने कितनों को इन्कार

नहीं किया, पर इनको कैसे ना कर दें ? सियालकोट में इनकी बड़ी भारी फर्म है। मैंने महीने भर में अच्छी तरह पता लगा लिया। हजारों का तो इनके यहाँ लेन-देन है।

माँ : बहू की बीमारी का पूछते होंगे ?

पिता : उन्हें शक था, पर मैंने कह दिया, जिगर का बुखार था, बिगड़ गया।

माँ : बच्चे को पूछते होंगे ?

पिता : हाँ पूछते, थे। मैंने कह दिया कि बच्चा है, पर माँ की मौत के बाद उसकी हालत ठीक नहीं रहती, परमात्मा ही मालिक है।

माँ : तो आप 'हाँ' कर दें।

पिता : हाँ, मैं तो शगुन ले लूँगा।

[चले जाते हैं। हुक्के की आवाज़ दूर होते-होते गुम हो जाती है। माँ खुश-खुश कमरे में घूमती है, भाषी आता है और तेज़ी से निकल् जाता है।]

माँ : भाषी !

भाषी : मैं डाक्टर के यहाँ जा रहा हूँ !

[तेज़ी से चला जाता है। बीमार के कमरे से सुरेन्द्र निकलता है]

सुरेन्द्र : (भरी हुई आवाज में) माँ जी !

माँ : क्या बात है ? क्या बात है ?

सुरेन्द्र : दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो !

माँ : क्या ?.....

[आँखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है। हवा की सांय-सांय]

सुरेन्द्र : अरुण इस संसार से जा रहा है !

[फानूस टूटकर धरती पर गिर पड़ता है। माँ भागकर दरवाजे पर जाती है।]

माँ : रोशी, रोशी !

[दरवाज़ा अन्दर से बन्द है]

माँ : रोशी, रोशी !

रोशन : (कमरे के अन्दर से भर्राये स्वर में) क्या बात है ?

माँ : दरवाज़ा खोलो !

रोशन : तुम लक्ष्मी का स्वागत कर आओ !

माँ : रोशी !

[सीढ़ियों से रोशन के पिता के हुक्का पीने की आवाज़ आती है।]

पिता : (सीढ़ियों से ही) रोशन की माँ, बधाई हो।

[पिता का प्रवेश। माँ उनकी ओर मुड़ती है।]

पिता : बधाई हो, मैंने शगुन ले लिया।

[कमरे का दरवाजा खुलता है, मृत बालक का शव लिए रोशन आता है।]

रोशन : हाँ, नाचो, गाओ, खुशियाँ मनाओ।

पिता : हैं ! मर गया !!

[हाथ से हुक्का गिर जाता है और मुँह खुला रह जाता है।]

माँ : मेरा लाल ! (चीख मारकर सिर थामे धम् से बैठ जाती हैं)

सुरेन्द्र : माँ जी, जाकर दाने लाओ और दिये का प्रबन्ध करो।

[पर्दा गिरता है।]

विष्णु प्रभाकर

सीमा-रेखा

विष्णु प्रभाकर

[जन्म : सन् १६१२]

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर में हुआ और आपने पंजाब विश्वविद्यालय से बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। इसके अलावा आपने प्रभाकर की भी परीक्षा पास की और तभी से आपके नाम के साथ 'प्रभाकर' जुड़ गया। यद्यपि आपने कुछ दिनों तक आल इंडिया रेडियो में नाट्य निर्देशक के रूप में भी काम किया है, पर इस एक व्याघात को छोड़कर आप सर्वदा स्वतन्त्र लेखन-कार्य करते रहे हैं। आप सबसे पहले १६३७ में प्रकाश में आए, जब जैनेन्द्र कुमार के सम्पादन में आपकी पहली कहानी 'हंस' में प्रकाशित हुई। तब से आप निरन्तर उपन्यास कहानी और एकांकी नाटक लिखते रहे हैं। आपके अधिकतर एकांकी रेडियो के लिए लिखे गए और इसलिए उनका ध्वनि-पक्ष विशिष्ट है। चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और चित्रण करना आपको बहुत अच्छा लगता है। इसके लिए आपने स्वप्न और स्वगत-कथन का भी बहुत मार्मिक प्रयोग किया है। व्यक्तियों की टकराहट और उसके मनोवैज्ञानिक कारण आपके अधिकांश नाटकों का आधार हैं। परिवार का क्षेत्र हो या समाज का, विष्णुजी उसमें टकरानेवाले चरित्रों के मन तक पहुँचना जरूरी समझते हैं। अब तक आपने कई एकांकी-संग्रह प्रकाशित किए हैं।

सीमा-रेखा

'सीमा-रेखा' विष्णु प्रभाकर के बाद के लिखे हुए एकांकियों में और वह विशेष रूप से रंगमंच के लिए लिखा गया है। इस एकांकी विष्णुजी ने एक ही परिवार के चार भाइयों के बीच की टकराहट मनोवैज्ञानिक रीति से चित्रित किया है। इस एकांकी का द्वन्द्व और सं

इतना व्यापक और प्रभावपूर्ण है कि कर्तव्य की सीमाएँ और कठोरताएँ एक साथ दर्शक के समक्ष मूर्तिमान हो उठती हैं। एकांकी के चारों पुरुष सगे भाई हैं। सब के भिन्न-भिन्न व्यवसाय हैं और उनके कर्तव्य और दृष्टि-कोण भी भिन्न हैं। प्रत्येक पात्र यथार्थ को अपने स्वार्थ की दृष्टि से ही ग्रहण करता है, दूसरे का पक्ष उसे दिखाई नहीं देता। इस प्रकार प्रत्येक पात्र अपनी सीमा-रेखा से बँधा है। यही सत्य एकांकी में प्राण फूँकता है और उस टकराहट को जन्म देता है जिससे हम जीवन की जटिलता को समझने में समर्थ होते हैं। साथ ही, जनतंत्र में जनता के कष्ट और शासकों की संकीर्णता का भी बड़ा यथार्थ रूप प्रकट हो जाता है।

सीमा–रेखा

पात्र :

१. लक्ष्मीचन्द्र

२. शरतचन्द्र

३. सुभाषचन्द्र

४. कैप्टन विजय

५. तारा

६. अन्नपूर्णा

७. सविता

८. उमा

[दूसरे भाई, उपमंत्री शरतचन्द्र का ड्राइंगरूम। आयु ५२ वर्ष। आधुनिक पर सादगी की छाप। दीवार पर गाँधी जी का तैल-चित्र है। दो-चार चित्र तिपाइयों पर भी हैं। पुस्तकें काफी हैं। बीचों-बीच एक सोफा-सेट है। उत्तर की ओर सामने दो द्वार हैं जो बाहर बरामदे में खुलते हैं। उसके पार सड़क है। पूर्व और पश्चिम के द्वार घर के अन्दर जाते हैं। सोफे व मेज़ों के आस-पास कुर्सियाँ हैं। पर्दा उठने पर मंच खाली है। दो क्षण बाद शरतचन्द्र तेज़ी से आते हैं। बेहद परेशान हैं। कई क्षण बेचैनी से घूमते हैं, फिर टेलीफ़ोन उठा लेते हैं। नम्बर मिलाते हैं।]

शरत : हलो, मैं शरत बोल रहा हूँ। विजय का कुछ पता लगा... क्या? क्या अभी तक नहीं लौटे? झगड़ा बढ़ गया है। क्या? गोली...गोली चलानी पड़ी। भीड़ बैंक के पास बेकाबू हो गयी थी। बैंक को लूटा? नहीं...कहीं और लूटमार हुई? नहीं...कोई घायल? अभी कुछ पता नहीं। ओह, देखो अभी पता करके बताओ। विजय आये तो मुझे टेलीफोन करने को कहो...तुरन्त...समझे...मैं घर पर ही हूँ।

[दूसरा नम्बर मिलाना चाहते हैं कि उनकी पत्नी अन्नपूर्णा घबराई हुई बाहर से आती है।]

अन्नपूर्णा : आपने कुछ सुना है?

शरत : हाँ, सुना है गोली चल गयी!

अन्नपूर्णा : अपने राज में भी गोली चलती है?

शरत : अपना राज समझता कौन है? जब तक अपना राज नहीं समझेंगे, तब तक गोली चलेगी ही। लेकिन खैर, तुम कहाँ गयी थीं?

अन्नपूर्णा : जीजी के पास! रास्ते में सुना रामगंज में गोली चल गयी। बाजार बन्द हो रहे हैं। भय छाया हुआ है। लोग सरकार को गालियाँ दे रहे हैं।

शरत : (चोंगा रखकर आगे आ जाते हैं।) सरकार को गाली ही दी जाती है। गोली चली तो गाली देते हैं। बैंक लुट जाता तब भी गाली ही देते।

अन्नपूर्णा : (एकदम) बैंक ! कौन-सा बैंक लुट रहा था ? बैंक से तो कुछ झगड़ा नहीं था। कल आपके पीछे कुछ विद्यार्थी बस वालों से झगड़ पड़े थे और आप जानते हैं कि विद्यार्थी. . . .

शरत : (एकदम) कि विद्यार्थी कानून की चिंता नहीं करते। बच्चे हैं, अल्हड़ हैं (तेज होकर) यह भी कोई बात है ? लोग पागल हो जाते हैं। कानून अपने हाथ में ले लेते हैं। गोली चली है तो जरूर कोई कारण रहा होगा। कुछ लोगों ने बैंक पर धावा बोला होगा। पुलिस पर पत्थर फेंके होंगे।

[सविता का प्रवेश—चौथे भाई, जन-नेता सुभाषचन्द्र की पत्नी, आयु पैंतीस वर्ष]

सविता : फेंके होंगे तो इसका यह अर्थ नहीं कि पत्थर के जवाब में गोली चला दी जाय। गोली उन्हें आत्मरक्षा के लिए नहीं दी जाती, जनता की रक्षा के लिए दी जाती है।

अन्नपूर्णा : सविता, तुम कहाँ से आ रही हो ?

[लक्ष्मीचन्द्र का प्रवेश—व्यापारी, सब से बड़े भाई, आयु ५६ वर्ष]

शरत : तुम क्या कह रही हो ?

सविता : मैं ठीक कह रही हूँ. . . .

लक्ष्मी : तुम बिलकुल गलत कह रही हो। पुलिस गोली न चलाती तो बैंक लुट जाता, बाज़ार लुट जाता, चारों ओर लूट-मार मच जाती। शासन की जड़ें हिल जातीं।

सविता : शासन की जड़ें हिलतीं या न हिलतीं दादाजी, पर आपकी जड़ें जरूर हिल जातीं। आपका व्यापार ठप्प हो जाता। आपका नुकसान होता. . . .

लक्ष्मी : हाँ मेरा नुकसान होता। मैं सरकार की प्रजा हूँ। प्रजा की रक्षा करना सरकार का फ़र्ज है. . . .!

सविता : यानी सरकार की पुलिस आपकी रक्षा करने के लिए है।

लक्ष्मी : हाँ, मेरी रक्षा करने के लिए है।

सविता : केवल आपकी. . . . .?

अन्नपूर्णा : न, न, सविता। इनका मतलब केवल अपने से नहीं है। भीड़ इनका ही नुकसान करके न रह जाती। वह सारे शहर को बर-बाद कर देती।

सविता : भीड़ में इतनी शक्ति है, जीजी ?

शरत : भीड़ में कितनी शक्ति है, सवाल यह नहीं है।

सविता : तो क्या है ?

शरत : सवाल यह है कि क्या भीड़ को कानून अपने हाथ में लेने का अधिकार है ? मैं समझता हूँ उसे यह अधिकार नहीं है !

सविता : और यदि वह लेती है तो. . . .

शरत : तो वह विद्रोह है और विद्रोह को दबाने का सरकार को पूरा-पूरा अधिकार है।

सविता : लेकिन विद्रोह क्यों किया गया है यह देखना क्या सरकार का कर्तव्य नहीं है ?

[टेलीफ़ोन की घंटी बजती है। शरत एकदम चोंगा उठाते हैं। सब उनके पास आते हैं।]

शरत : हलो. . .हाँ मैं ही हूँ. . .क्या स्थिति अभी काबू में नहीं है ? लूट-मार तो नहीं हुई न ? अच्छा. . .घायल कितने हुए. . . पाँच वहीं मर गये। बीस घायल अस्पताल में हैं. . .मैं अभी आता हूँ। अभी. . . . .

[टेलीफ़ोन का चोंगा रख कर तेजी से जाने को मुड़ते हैं ।]

अन्नपूर्णा : (एकदम) नहीं, नहीं, आप ऐसे नहीं जा सकते।

लक्ष्मी : हाँ, पहले फ़ोन करके पुलिस बुला लो ।

सविता : पुलिस क्या करेगी ? चलिए मैं चलती हूँ ।

शरत : आप चिन्ता न करें । पुलिस की गाड़ी बाहर खड़ी है ।

सविता : (व्यंग्य से) जरूर होगी । जनता के नेता अब पुलिस की गाड़ी में ही जा सकते हैं । (आवेश में) जिन्होंने जनता का नेतृत्व किया, जनता के आगे होकर गोलियाँ खायीं, जो एक दिन जनता की आँखों के तारे थे वे ही आज पुलिस के पहरे में जनता से मिलने जाते हैं ।

[शरत तिलमिलाकर कुछ कहना चाहते हैं, कि तभी तीसरे भाई विजय, पुलिस कप्तान, आयु ४८ वर्ष, पूरी वर्दी में प्रवेश करते हैं ।]

लक्ष्मी : (एकदम) विजय !

सविता : कप्तान साहब, आप यहाँ ?

अन्नपूर्णा : विजय, अब क्या हाल है ?

शरत : विजय, तुमने यह क्या कर डाला ? तुमने गोली क्यों चलायी ? तुम्हें सोचना चाहिए था कि. . . .

लक्ष्मी : विजय ने जो कुछ किया सोच-समझकर किया है और ठीक किया है ।

अन्नपूर्णा : हाँ, बिना सोचे-समझे कोई काम कैसे किया जा सकता है । सोचा तो होगा ही पर. . . . .

शरत : नहीं, नहीं, यह बहुत बुरा हुआ । जानते नहीं, अब जनता का राज है और जनता के राज में, जनतन्त्र में, जनता की प्रतिष्ठा होती है ।

विजय : लेकिन गुण्डों की नहीं !

सविता : वे गुण्डे हैं !

लक्ष्मी : हाँ वे गुण्डे हैं । दंगा करने वाले गुण्डे होते हैं, शोहदे होते हैं ।

शरत : नहीं भइया। वे सब गुण्डे नहीं होते। हाँ, गुण्डों के बहकाये में जरूर आ जाते हैं।

सविता : यह भी खूब रही। जनता कुछ गुण्डों के बहकाये में आ जाय और आप लोगों की, जो कल तक उनके सब-कुछ थे, कोई बात न सुने !

शरत : (तिलमिलाकर) सविता. . .सविता. . . .

सविता : सुनिए भाई साहब ! बात यह है कि आप अपना सन्तुलन खो बैठे हैं। आप निरंकुश होते जा रहे हैं। आप अपने को केवल शासक मानने लगे हैं। आप भूल गये हैं कि जन-राज में शासक कोई नहीं होता, सब सेवक होते हैं।

विजय : (थका-सा) सेवक होते हैं तो क्या सेवक मर जाने के लिए हैं ?

सविता : हाँ, मर जाने के लिए ही हैं। कोई मर कर देखे तो. . . .

लक्ष्मी : सविता, बहू ! तुम बहुत आगे बढ़ रही हो। स्वतन्त्रता का युग है तो इसका यह मतलब नहीं कि बड़े-छोटे का विचार न किया जाय।

अन्नपूर्णा : हाँ सविता। तुम्हें इतना तेज नहीं होना चाहिए।

सविता : मैं क्षमा चाहती हूँ। आप सब मुझसे बड़े हैं। आपका अपमान मैं कभी नहीं कर सकती, ऐसा सोच भी नहीं सकती। पर इस नाते-रिश्ते से ऊपर भी तो हम कुछ हैं। हम स्वतन्त्र भारत की प्रजा हैं, हम एक स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं। हम इन्सान हैं !

विजय : इन्सान हैं तो सभी हैं। स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं तो सभी हैं। कानून सब पर लागू होता है।

लक्ष्मी : बेशक सब पर लागू होता है। सब समान हैं।

सविता : बेशक सब समान हैं दादाजी, पर जिन पर व्यवस्था और न्याय की जिम्मेदारी है, उनका दायित्व अधिक है।

शरत : जरूर है, इसीलिए मुझे जाना है। लेकिन जाने से पहले मैं जानना चाहूँगा विजय, कि आखिर बात कैसे बढ़ गयी ?

विजय : मैं तो वहाँ था नहीं। कल के झगड़े के बारे में आप जानते ही हैं। आज फिर विद्यार्थियों ने प्रदर्शन किये। डिपो पर हमला किया। वहाँ से वे बैंक के पास आये. . . .

शरत : क्या उन्होंने बैंक पर हमला किया ?

विजय : कर सकते थे। शायद वे यही चाहते थे।

शरत : कौन ? विद्यार्थी. . . .

विजय : यह तो नहीं कह सकता। भीड़ में केवल विद्यार्थी ही नहीं थे। शरारती लोग ऐसे अवसरों की ताक में रहते हैं। पुलिस ने भीड़ को रोका तो उन्होंने पत्थर फेंके. . . .

अन्नपूर्णा : पुलिस पर पत्थर फेंके ?

लक्ष्मी : तब तो जरूर उनका इरादा बैंक लूटने का था।

शरत : क्या पुलिस वालों को चोटें आयीं ?

विजय : जी हाँ, दस-बारह सिपाही घायल हो गये। एक इन्सपेक्टर का सिर फूट गया।

सविता : बस !

लक्ष्मी : तुम चाहती थीं कि वे सब मर जाते।

[चौथे भाई सुभाषचन्द्र का प्रवेश—जन-नेता, आयु ४४ वर्ष]

सुभाष : हाँ, वे सब मर जाते तो ठीक होता।

शरत : सुभाष !

अन्नपूर्णा : सुभाष, यह तुम क्या कह रहे हो ?

लक्ष्मी : तुम तो कम्यूनिस्ट हो गये हो और अपनी बहू को भी तुमने ऐसा ही बना दिया है।

[बाहर शोर उठता है।]

सुभाष : दादाजी ! मैं न कभी कम्यूनिस्ट था, न हूँ और न कभी बनूँगा पर मैं स्वतन्त्र भारत में गोली चलाना जुर्म मानता हूँ।

लक्ष्मी : चाहे जनता कुछ भी करे ! उसे सब अधिकार हैं ?

सुभाष : बेशक हैं । उसी ने इन लोगों के (शरत की ओर इशारा करता है) हाथ में शासन की बागडोर सौंपी है ।

शरत : किसलिए सौंपी है ? रक्षा के लिए या बरबादी के लिए ?

[बाहर शोर तेज़ होता है । सविता चौंकती है । धीरे-से बोलती है और बाहर जाती है । शेष लोग तेज़-तेज़ बोलते रहते हैं ।]

सविता : (अलग से) यह शोर कैसा है । देखूँ तो. . .

[खिसक जाती है ।]

सुभाष : (शरत की बात का उत्तर देते हुए) रक्षा के लिए ।

शरत : लेकिन जब जनता स्वयं नाश करने पर तुल जाय तो क्या हमें उसे ऐसा करने देना चाहिए ?

सुभाष : नहीं !

विजय : (एकदम) यही तो हमने किया है ।

लक्ष्मी : और ठीक किया है ।

शरत : और ऐसा करने का उन्हें अधिकार है । वे हैं ही इसलिए । तुम भी इसे मानते हो तो फिर कहना क्या चाहते हो ?

सुभाष : यही कि हमें राज्य की रक्षा करते-करते प्राण दे देने चाहिए, प्राण लेने नहीं । हमें देने का ही अधिकार है लेने का नहीं !

शरत : सुभाष ! यह कोरा आदर्शवाद है ।

शरत : कर्तव्य का पालन करते हुए मरना यदि आदर्शवाद है तो मैं कहूँगा कि विश्व के प्रत्येक नागरिक को ऐसा ही आदर्शवादी होना चाहिए ।

शरत : सुभाष, तुम केवल बोलना जानते हो ।

सुभाष : आपसे ही सीखा है, भाई साहब ।

विजय : लेकिन जिम्मेदारी सम्हालना नहीं सीखा ।

सुभाष : वह भी सीखा है। मैं जनता से प्रतिज्ञा करके आया हूँ, आज शाम तक गोली चलाने वाले पुलिस कप्तान को मोअत्तिल कराके छोड़ूँगा।

अन्नपूर्णा : क्या—क्या कहा तुमने !

लक्ष्मी : अपने ही घर में तुम अपनों के दुश्मन बनकर आये हो।

सुभाष : अपना-पराया मैं कुछ नहीं जानता। मैं जनता का प्रतिनिधि हूँ। मैं माननीय उपमन्त्री श्री शरतचन्द्र को बताने आया हूँ कि उनके एक अधिकारी ने निहत्थी जनता पर गोली चलाकर जो बर्बर काम किया है, उसकी जाँच करवानी होगी और जब तक वह जाँच पूरी नहीं होती, तब तक गोली चलाने से सम्बन्धित सब व्यक्तियों को मोअत्तिल करना होगा।

शरत : यह किसकी माँग है ?

सुभाष : उस जनता की जिसने आपको गद्दी सौंपी है, जिससे आज आप दूर भागते हैं, डरते हैं।

शरत : मैं डरता हूँ ?

सुभाष : हाँ, आप डरते हैं। यदि न डरते तो घर में छिपकर बैठ रहने की बजाय जनता के पास जाते। तब यह नौबत न आती, गोली न चलती, निर्दोष निहत्थे नागरिक न मरते !

शरत : लेकिन तुम भी तो जनता के नेता हो, तुमने कौन-सा तीर मार लिया ?

सुभाष : मैंने क्या किया है, यह मेरे मुँह से सुनकर क्या करेंगे, पर इतना कहे देता हूँ कि जनता संयत न रहती तो कप्तान विजयचन्द्र यहाँ बैठे दिखाई न देते। इनसे पूछिये तो कि क्या इन्हें बन्दूकें इसीलिए दी गई हैं कि जरा-सा पत्थर आ लगे तो जनता को गोली से भून दें.....

लक्ष्मी : गोली न चलती तो....

सुभाष : (एकदम) दादाजी, आप न बोलें। आप व्यापारी हैं। आपका सिद्धान्त आपका स्वार्थ है. . . .

लक्ष्मी : (एकदम आवेश में) मैं तो स्वार्थी हूँ, पर तुम अपनी कहो। तुम्हारी नेतागीरी भी तो मुझ स्वार्थी के पैसे से ही चलती है।

सुभाष : ठीक है, उतना पैसा सार्थक होता है. . .पर आप यह क्यों भूल गये कि उस दिन जब कुछ व्यापारी पकड़े गये थे तो आपने विजय भइया को कितना कोसा था।

लक्ष्मी : और आज तुम कोस रहे हो। क्योंकि तुम मन्त्री नहीं हो, विरोधी दल के हो।

सुभाष : हाँ मैं विरोधी दल का हूँ, लेकिन दादाजी ! मैं आपसे बातें नहीं कर रहा।

लक्ष्मी : (क्रोध में) तो मैं ही कब तुमसे बातें कर रहा हूँ, वाह !

[तेजी से अन्दर जाते हैं।]

अन्नपूर्णा : दादाजी, दादाजी. . . .

[पीछे-पीछे जाती है, विजय भी जाते हैं।]

सुभाष : मैं माननीय उपमन्त्री महोदय से पूछता हूँ कि. . . .

शरत : (एकदम) और मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या जनता के राज में भी सड़कों पर प्रदर्शन होने चाहिये, भीड़ को कानून हाथ में लेना चाहिए ?

सुभाष : जब तक सरकार और उसके अधिकारी ठीक आचरण नहीं करेंगे, तब तक जनता प्रदर्शन करती ही रहेगी। कानून हाथ में लेती रहेगी। भाई साहब, इस नौकरशाही ने, शासन की इस भूख ने आपको जनता से दूर कर दिया है।

शरत : सुभाष, तुम बार-बार एक ही बात की रट लगाये जा रहे हो।

सुभाष : मैं ठीक कह रहा हूँ। जनता सरकार के ढाँचे को उतना महत्त्व नहीं देती, जितना अधिकारियों की ईमानदारी और हमदर्दी को। आप चलिए मेरे साथ. . . .

[सहसा शोर बढ़ता है।]

शरत : (एकदम) हाँ मैं चलूँगा, मुझे तो कभी का चले जाना था, पर. . .यह शोर कैसा है ?

सुभाष : अवश्य कोई बात है। देखूँ. . . .

[जाने को मुड़ता है तभी लक्ष्मीचन्द्र की पत्नी तारा देवी विक्षिप्त-सी वहाँ आती है।]

तारा : (पागल-सी) विजय कहाँ है ?

[चारों तरफ देखती है।]

सुभाष : भाभीजी, क्या बात है ?

तारा : मैं पूछती हूँ, विजय कहाँ है ? उसका मनचाहा हो गया। उसकी गोली अरविन्द के सीने के पार हो गयी. . . .

शरत : (एकदम) भाभी !

सुभाष : भाभी, तुम क्या कह रही हो ?

[सविता का प्रवेश]

सविता : भाभी ठीक कह रही हैं। अरविन्द जनता की सरकार की गोली का शिकार हो गया।

[लक्ष्मीचन्द्र, विजय, अन्नपूर्णा का प्रवेश]

लक्ष्मी : कौन गोली का शिकार हो गया ?

सविता : अरविन्द !

लक्ष्मी : (कांपकर) क्या. . .क्या अरविन्द मर गया ?

तारा : हाँ गोली उसके सीने के पार हो गयी ! वह मर गया !

[सब हक्के-बक्के रह जाते हैं। पागल से देखते हैं। लक्ष्मीचन्द्र सोफे पर गिर पड़ते हैं। विजय दोनों हाथों से मुँह ढक लेते हैं। अन्नपूर्णा पागल-सी तारा को सम्हालती है और बोलती है।]

अन्नपूर्णा : अरे, मेरे अरविन्द को किसने मार डाला, नाश हो जाय इस पुलिस का; बिना गोली कोई बात ही नहीं करता। अरे विजय, यह तुमने क्या किया ?

विजय : (पागल-सा) ओह ! यह क्या हुआ ? अरविन्द वहाँ क्यों गया था ?

[टेलीफ़ोन की घंटी बजती है, सविता उठती है।]

सविता : हलो, जी हाँ, हैं (विजय से) कप्तान साहब, आपका फ़ोन है !

विजय : (फोन लेकर) जी हाँ क्या. . .भीड़ बेकाबू हो गयी है, टोलीगंज में, हाँ, अभी आया।

[चोंगा पटककर तेजी से किसी की ओर देखे बिना भागता है।]

सुभाष : मैं भी जाता हूँ, कहीं कुछ हो न जाय।

[जाता है।]

शरत : मैं भी चलता हूँ।

[मुड़ता है पर जब तारा बोलती है तो ठिठक जाता है]

अन्नपूर्णा : तारा भाभी भी अन्दर चलें।

[उठाती है।]

तारा : (पूर्ववत्) सब जाओ, पर अरविन्द क्या आयगा ? उसने किसी का क्या बिगड़ा था। वह चिल्लाया—मैं दंगा नहीं करता, मैं बाज़ार जाता हूँ. . .

[विक्षुब्ध जाती है।]

लक्ष्मी : पर मदान्ध पुलिसवालों ने एक न सुनी। पुलिस को अपनी जान इतनी प्यारी है कि एक दस वर्ष के बच्चे से भी उन्हें डर लगा. . .

सविता : (जाते-जाते) किसी ने उसकी आवाज नहीं सुनी। किसी ने उसकी ओर नहीं देखा।

लक्ष्मी : सब अन्धे हैं। ताकत के अन्धे ! जो सामने आता है उसे कुचल देना चाहते हैं। चाहे वह धूल हो चाहे पत्थर. . . .

शरत : (जाता हुआ, व्यथा से) ओह, यह क्या हो रहा है। यह क्या हुआ ?

लक्ष्मी : वही हुआ जो विजय चाहता था, जो तुम चाहते थे।

शरत : (एकदम) दादा जी....

लक्ष्मी : (पूर्ववत्) तुमने मेरा घर बरबाद कर दिया। मेरे बच्चे को मार डाला। तुम सब हत्यारे हो....

शरत : दादा जी, ओह, मैं क्या कहूँ.....

लक्ष्मी : (पूर्ववत्) जब पैसे की जरूरत होती है तो मेरे पास भागे आते हो। टैक्स माँगते हो, दान माँगते हो, व्यापार में पैसा लगाने को कहते हो और...मुझी पर गोली चलाते हो....

शरत : दादा जी, गोली उन्होंने जानबूझकर नहीं चलायी। अरविन्द तो बच्चा था! उससे किसी का क्या बैर था?

लक्ष्मी : बैर क्यों नहीं था? वह जनता में था और तुम हो जनता के शत्रु! मैं अभी जाकर विजय से पूछता हूँ....

[जाने को उठते हैं, सविता आती है]

सविता : अभी रुकिए दादा जी। भाभी जी को दौरा पड़ गया है... (टेलीफ़ोन की घंटी बजती है, उठाती है) हलो, जी हाँ (शरत से) आपका फ़ोन है।

शरत : (फ़ोन लेकर) हलो, जी हाँ। क्या....मंत्रि-मण्डल की बैठक हो रही है, मुझे भी बुलाया है। मैं अभी आया!

[फ़ोन रखकर जाने को मुड़ते हैं। तभी सुभाष का तेजी से प्रवेश]

सुभाष : भाई साहब! आपको अभी चलना है।

शरत : मैं चल ही रहा हूँ। मंत्रि-मंडल की बैठक हो रही है।

सुभाष : वहाँ नहीं, आपको मेरे साथ चलना है। आपको जनता के पास चलना है। जनता में बड़ी उत्तेजना है। विद्यार्थी पीछे रह गये दूसरे समाजद्रोही तत्त्व आगे आ गये हैं और विजय ने गोली चलाने से इनकार कर दिया है।

शरत : (पागल-सा) विजय ने गोली चलाने से इनकार कर दिया।

सुभाष : जी हाँ !

शरत : वह कहाँ है ?

सुभाष : भीड़ के सामने !

शरत : वह भीड़ के सामने है। (एकदम दृढ़ होकर) चलो सुभाष, मैं देखता हूँ, जनता क्या चाहती है।

[दोनों जाते हैं।]

सविता : मैं भी चलती हूँ।

लक्ष्मी : मैं भी चलता हूँ।

सविता : नहीं, नहीं, आप ठहरें। आप भाभी जी को सम्हालें।

[जाती है, तभी अन्नपूर्णा आती है।]

अन्नपूर्णा : क्या हुआ दादा जी, सब कहाँ गये ?

लक्ष्मी : सब गये। सुभाष आया था। कहता था विजय ने गोली चलाने से इनकार कर दिया। अब. . .अब तो इनकार करना ही था। वे तो मेरे बच्चे को मारना चाहते थे. . . .

अन्नपूर्णा : नहीं, नहीं, दादाजी, यह बात नहीं थी।

लक्ष्मी : यह बात कैसे नहीं थी ? मैं उन सबको जानता हूँ। वे मेरे पैसे से आगे बढ़े और मुझी को बरबाद कर दिया। मैं पूछता हूँ उन्होंने पहले ही गोली चलाने से इन्कार क्यों न किया। क्योंकि . . .क्योंकि. . . .

अन्नपूर्णा : नहीं, दादाजी, नहीं. . . .

लक्ष्मी : (आवेश) ये मेरे छोटे भाई. . .एक ने मुझे स्वार्थी, देशद्रोही कहा, दूसरे ने मेरे बेटे को मार डाला। मेरे मासूम बच्चे को मार डाला, मार डाला. . . . .

[रोकर गिर पड़ते हैं।]

अन्नपूर्णा : (सम्हालती हुई) दादाजी, दादाजी ! ओह, यह एक ही घर में क्या होने लगा ? भाई-भाई में यह मनमुटाव ! (एकदम) नहीं, नहीं, यह नहीं होगा । दादाजी, आप ग़लत समझ रहे हैं. . . .

लक्ष्मी : (आँखें खोलकर) मैं ग़लत समझ रहा हूँ. . .मैं ग़लत समझ रहा हूँ. . .अरविन्द, मेरे बच्चे, तू चला गया, मैं तुझसे दो बातें भी न कर सका, तू तो भीड़ में भी नहीं था ! अरविन्द. . . .

[तारा का प्रवेश]

तारा : अरविन्द ! क्या अरविन्द आया है । कहाँ है ?

[अन्नपूर्णा तारा को पकड़ती है ।]

अन्नपूर्णा : भाभी जी, भाभी जी, आप क्यों उठ आयीं । हम अभी अस्पताल चलते हैं । आप अपने को सम्हालिए ।

[अन्दर ले जाती हैं । लक्ष्मीचन्द्र भी जाते हैं । तभी अस्त-व्यस्त, परेशान सविता का प्रवेश]

सविता : (बोलती जाती है) अद्‌भुत दृश्य था, अपार भीड़ थी, उनके आगे खड़े थे कप्तान भइया । दूर से देख सकी । किसी ने पास जाने ही नहीं दिया । एक रेला आया और मैं पीछे आ पड़ी ।

[अन्नपूर्णा आती है ।]

अन्नपूर्णा : तुम आ गयीं । वे लोग कहाँ हैं ? सुभाष कहाँ है ?

सविता : कुछ पता नहीं, मुझे किसी का कुछ पता नहीं । मैं आगे नहीं बढ़ सकी और वे दोनों आगे बढ़े चले गये । एक बार भीड़ के बीच में सब को देखा फिर उस ज्वार-भाटे में सब कुछ छि[illegible] गया । (टेलीफ़ोन की घंटी बजती है, उठाती है ।) हलो, जी हाँ, जी वे तो गये । जी हाँ, भीड़ में जाते मैंने देखा था । जी हाँ । (फ़ोन रखती है) मंत्रि-मंडल की बैठक में शरत भा[illegible] साहब का इन्तज़ार हो रहा है । वे अभी तक पहुँचे ही नहीं मैं कहती हूँ ये लोग मंत्रि-मंडल की बैठकें क्यों कर रहे हैं

जो लोग विदेशियों की गोलियों से नहीं डरे, वे अपने ही बच्चों और भाइयों से क्यों डरते हैं ? जनता में क्यों नहीं आते...

अन्नपूर्णा : क्योंकि शासन भीड़ में आकर नहीं चलाया जाता। आखिर जनतन्त्र भी तो कानून का राज है ?

सविता : है, पर...(एकदम) नहीं, अब बहस करने का समय नहीं है। सोचने का और काम करने का समय है। बेचारा अरविन्द ! उसकी मौत क्यों हुई ? जन-राज्य में एक निर्दोष, निरीह बालक की हत्या क्यों हुई ? (टेलीफ़ोन की घंटी फिर बजती है, उठाकर) हलो, क्या, हाँ, हाँ, कप्तान साहब तो कभी के चले गये। क्या, उनका पता नहीं मिल रहा ! नहीं, नहीं, वे...वे भीड़ के सामने थे। मैंने देखा था। जी हाँ, मैंने देखा था। उधर का क्या हाल है, ठीक नहीं, हूँ। उनके हुक्म के बिना कुछ नहीं कर सकते... हाँ, हाँ, आये तो कह दूँगी...क्या...कोई आया है। हाँ, हाँ पूछिए...हलो ...हलो...हलो...(फ़ोन रखकर) कनेक्शन काट दिया...अवश्य कोई बात है। (जाने को मुड़ती है।) मैं जाती हूँ....

अन्नपूर्णा : सविता ! तुम न जाओ। ठहरो तो सविता....(सविता नहीं रुकती) गयी।

लक्ष्मी : (आकर) कौन गयी ? क्या बात है ?

अन्नपूर्णा : जरूर कोई बात है। सविता टेलीफोन कर रही थी, पता नहीं किसी ने क्या कहा, भागी चली गयी।

लक्ष्मी : तो मैं भी जाता हूँ। अरविन्द को भी लाना है।

[गला रुँध जाता है, तेजी से जाते हैं।]

अन्नपूर्णा : दादा जी ! अभी रुकिए ! किसी को आ जाने दीजिए।

लक्ष्मी : घबराओ नहीं, मैं बच्चा नहीं हूँ।

[जाते हैं, दूसरे द्वार से विजय की पत्नी उमा, आयु ४२ वर्ष, पागलों की तरह आती है।]

उमा : जीजी ! सब कहाँ हैं ?

अन्नपूर्णा : मुझे पता नहीं । यहाँ से तो कभी के गये । क्या तुझे सविता नहीं मिली ?

उमा : मुझे कोई नहीं मिला । अरविन्द की खबर सुनकर भागी आ रही हूँ । जीजी. . . जीजी, मैं भाभी जी को कैसे मुँह दिखाऊँगी ? मैं मर क्यों न गयी ।

अन्नपूर्णा : (शून्यवत्) न जाने क्या होने वाला है । एक ही घर के लोग एक-दूसरे को खा रहे हैं । (बाहर भीड़ का शोर) यह क्या ? लोग इधर आ रहे हैं ।

उमा : (द्वार पर जाकर देखती है, चीख पड़ती है ।) जीजी. . .ई. . . ई. . . .!

अन्नपूर्णा : क्या हुआ उमा ?

अन्नपूर्णा : (काँपकर) आप ! यह क्या हुआ ?

[उठकर तेजी से आगे बढ़ती है । तभी घायल शरत वहाँ आते हैं । मुख पर घाव हैं । एक हाथ बँधा है ।]

शरत : वही जो होना चाहिए था । विजय भीड़ में कुचला गया, पर उसने गोली नहीं चलायी ।

उमा : कुचले गये, कौन ?

शरत : विजय कुचला गया । चला गया ।

उमा : (चीखकर) भाई साहब, वे कहाँ हैं !

[भागती है ।]

अन्नपूर्णा : (शरत से) यह तुम क्या कह रहे हो ?

शरत : भीड़ सन्तुलन खो बैठी थी । विवेक खो बैठी थी । वह चिल्लाती रही—'अरविन्द कहाँ है ? अरविन्द को लौटाओ !' और विजय भीड़ के सामने अड़ा रहा । चिल्लाता रहा—'मुझसे अरविन्द का बदला लो । मैंने अरविन्द को मारा है । तुम मुझे मार डालो !"

उमा : और भीड़ ने उन्हें मार डाला।

शरत : पता नहीं किसने मार डाला. . .उनके गिरते ही भीड़ पर जैसे अंकुश लग गया, पर. . .पर. . .जब वहाँ शान्ति हुई तो विजय और सुभाष दोनों कुचले हुए पड़े थे।

उमा : सुभाष भी !

अन्नपूर्णा : सुभाष भी कुचला गया। हाय. . . .

शरत : हाँ सुभाष भी कुचला गया। लेकिन खबरदार जो उनके लिए रोये। रोने से उन्हें दुख होगा। उन्होंने प्राण दे दिये, पर शासन और जनता का सन्तुलन ठीक कर दिया। वे शहीद हो गये, पर दूसरों को बचा गये। नगर में अब बिल्कुल शान्ति है। सब मौन सगर्व इन बलिदानों की चर्चा कर रहे हैं। सब शोक-संतप्त हैं। (बाहर देखकर) लो, वे आ गये। रोना मत. . . रोना मत. . .(आगे बढ़कर) हाँ, वहीं लिटा दो. . .

[तभी लक्ष्मीचन्द्र और सविता के साथ पुलिस के तथा दूसरे अधिकारियों का प्रवेश। धीरे-धीरे वे विजय, सुभाष और अरविन्द की लाशें बराबर के कमरे में लाकर रखते हैं। एक भयंकर सन्नाटा छाया रहता है। सविता का मुख पत्थर की तरह कठोर है। लक्ष्मीचन्द्र तूफ़ान की तरह काँप रहे हैं। शरत दृढ़ता से प्रबन्ध में लगे हैं। सहसा उमा तेजी से बढ़ती है, बराबर के कमरे में झाँककर जोर की चीख़ मारती है।]

उमा : माँ. . .ऽऽ री. . .ई. . .यह क्या हुआ ?

[तारा अन्दर से आती है।]

तारा : कैसा शोर है अन्नपूर्णा। अरविन्द आ गया। कहाँ है ?

शरत : भाभी यह देखो, कमरे में तीनों लेटे हैं। कभी नहीं उठेंगे। ये अरविन्द और सुभाष हैं—यह जनता की क्षति है। और इधर यह विजय है—यह सरकार की क्षति है।

अन्नपूर्णा : (रोकर) यह तुम कैसी बावलों की-सी बातें करते हो। यह सब मेरे घर की क्षति है।

सविता : (उसी तरह पत्थर-वत्) नहीं जीजी। यह घर की नहीं, सारे देश की क्षति है, देश क्या हमसे और हम क्या देश से अलग हैं?

शरत : तुमने ठीक कहा सविता। यह हमारे देश की क्षति है। जनतन्त्र में सरकार और जनता के बीच कोई विभाजक-रेखा नहीं होती. . . .

[पर्दा गिरता है।]

जगदीशचंद्र माथुर

रीढ़ की हड्डी

जगदीशचन्द्र माथुर

[जन्म : सन् १९१७]

जगदीशचन्द्र माथुर का जन्म उत्तर प्रदेश के खुर्जा नगर में हुआ। आप उच्च शिक्षा के लिए प्रयाग गए जहाँ से आपने अंग्रेजी में एम० ए० किया और फिर आई० सी० एस० की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर भारत सरकार के पदाधिकारी बने। आप बिहार में शिक्षा-विभाग के सचिव और आकाशवाणी में महानिदेशक के पद पर भी काम कर चुके हैं। आजकल आप बैंकांक में संयुक्त राष्ट्र संघ के कृषि-खाद्य संस्थान में काम कर कर रहे हैं।

अपने छात्र-जीवन से ही माथुर साहब नाटक और रंगमंच में विशेष रुचि लेते रहे हैं। विद्यार्थी जीवन में ही आपने 'भोर का तारा' नाम का नाटक लिखा था जो मंच पर बड़ी सफलता से खेला गया और जिसकी दूर-दूर तक प्रशंसा हुई। आपका पूर्णाकार नाटक 'कोणार्क' प्रसादजी की नाट्य-शैली में लिखा गया बड़ा ही प्रभावपूर्ण नाटक है। रंगमंच और रेडियो नाटक के विकास में भी आपने बहुमूल्य योगदान किया है। आपके कुछ नाटकों में सरकारी अफसर के भी अंतरंग जीवन का परिचय मिलता है। आपने कुछ हल्के-फुल्के नाटक भी लिखे हैं जिनका संग्रह 'ओ मेरे सपने' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

रीढ़ की हड्डी

'रीढ़ की हड्डी' व्यंग्य-प्रधान एकांकी है जिसमें लेखक ने विवाह-सम्बन्धी रूढ़ि पर तीखा प्रहार किया है। हमारे समाज में जिस तरह वर-पक्ष के लोग कन्या को परखते हैं, वह कन्या के लिए अत्यन्त अपमान-जनक और अभद्र सिद्ध होता है। नाटक में लेखक ने उमा की योग्यता

और साहस का चित्रण करके उसकी इसी स्थिति का चित्रण किया है। यह नाटक रंगमंच पर अनेक बार सफलतापूर्वक खेला गया है। इसमें यथार्थ का ऐसा सजीव चित्रण है कि इस नाटक को देखने के बाद बहुतेरे लोगों को इस रूढ़ि की बुराई समझ में आ गई है।

रीढ़ की हड्डी

पात्र :

१. उमा

--लड़की

२. रामस्वरूप

--लड़की का पिता

३. प्रेमा

--लड़की की माँ

४. शंकर

--लड़का

५. गोपालप्रसाद

--लड़के का बाप

६. रतन

--नौकर

[मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अन्दर के दरवाजे से आते हुए जिन महाशय की पीठ नजर आ रही है वे अधेड़ उम्र के मालूम होते हैं, एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे में आते हैं। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।]

बाबू : अबे धीरे-धीरे चल।...अब तख्त को उधर मोड़ दे...उधर... बस, बस !

नौकर : बिछा दूँ साब ?

बाबू : (जरा तेज आवाज़ में) और क्या करेगा ? परमात्मा के यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या ?...बिछा दूँ साब !...और यह पसीना किसलिए बहाया है ?

नौकर : (तख्त बिछाता है) ही-ही-ही।

बाबू : हँसता क्यों है ?....अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की है। कलसों से नहाता था लोटों की तरह। यह तख्त क्या चीज है ?...उसे सीधा कर...यों...हाँ बस।...और सुन, बहूजी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए। चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आयी है, वही।

[नौकर जाता है। बाबू साहब इस बीच में मेजपोश ठीक करते हैं। एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ़ करते हैं। कुर्सियों पर भी दो-चार हाथ लगाते हैं। सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती हैं। गंदुमी रंग, छोटा क़द। चेहरे और आवाज से जाहिर होता है, किसी काम में बहुत व्यस्त हैं। उनके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है—खाली हाथ। बाबू साहब रामस्वरूप दोनों की तरफ़ देखने लगते हैं।]

प्रेमा : मैं कहती हूँ तुम्हें इस वक्त धोती की क्या जरूरत पड़ गयी ! एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में.......

रामा० : धोती ?

प्रेमा : हाँ, अभी तो बदल कर आये हो, और फिर न जाने किसलिए...

रामा० : लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने ?

प्रेमा : यही तो कह रहा था रतन।

राम० : क्यों बे रतन, तेरे कानों में डाट लगी है क्या ? मैंने कहा था— धोबी के यहाँ से जो चद्दर आयी है, उसे माँग ला. . . . .अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊँ ! उल्लू कहीं का।

प्रेमा : अच्छा, जा पूजावाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रक्खे हैं न ! उन्हीं में से एक चद्दर उठा ला।

रतन : और दरी ?

प्रेमा : दरी यहीं तो रक्खी है, कोने में। वह पड़ी तो है।

राम० : (दरी उठाते हुए) और बीबीजी के कमरे में से हारमोनियम उठा ला, और सितार भी।. . . .जल्दी जा।

[रतन जाता है। पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं।]

प्रेमा : लेकिन वह तुम्हारी लाड़ली बेटी तो मुँह फुलाये पड़ी है।

राम० : मुँह फुलाये !. . . .और तुम उसकी माँ किस मर्ज की दवा हो ? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ में आये हैं। अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाय तो मुझे दोष मत देना।

प्रेमा : तो मैं ही क्या करूँ ? सारे जतन करके तो हार गयी। तुम्हींने उसे पढ़ा-लिखाकर इतना सिर चढ़ा रक्खा है। मेरी समझ में में तो ये पढ़ाई-लिखाई के जंजाल आते नहीं। अपना जमाना अच्छा था ! 'आ-ई' पढ़ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधिनी' पढ़ ली। सच पूछो तो स्त्री-सुबोधिनी में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं—ऐसी बातें कि क्या तुम्हारी बी० ए०, एम० ए० की पढ़ाई होगी। और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे हैं—

राम० : ग्रामोफोन बाजा होता है न ?

प्रेमा : क्यों ?

राम० : दो तरह का होता है। एक तो आदमी का बनाया हुआ। उसे एक बार चलाकर जब चाहे तब रोक लो। और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ। रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं।

प्रेमा : हटो भी। तुम्हें ठिठोली ही सूझती रहती है। यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते। अब देर ही कितनी रही है, उन लोगों के आने में।

राम० : तो हुआ क्या ?

प्रेमा : तुम्हीं ने तो कहा था कि जरा ठीक-ठाक करके नीचे लाना। आजकल तो लड़की कितनी ही सुन्दर हो, बिना टीमटाम के भला कौन पूछता है ? इसी मारे मैंने तो पौडर-वौडर उसके सामने रक्खा था। पर उसे तो इन चीजों से न जाने किस जन्म की नफ़रत है। मेरा कहना था कि आँचल में मुँह लपेटकर लेट गयी। भई, मैं बाज आयी तुम्हारी इस लड़की से।

राम० : न जाने कैसा इसका दिमाग़ है ! वरना आजकल की लड़कियों के सहारे तो पौडर का कारबार चलता है।

प्रेमा : अरे मैंने तो पहले ही कहा था। इंट्रेंस ही पास करा देते— लड़की अपने हाथ रहती, और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती ! पर तुम तो.....

राम० : (बात काटकर) चुप, चुप।...(दरवाजे में झाँकते हुए) तुम्हें क़तई अपनी जबान पर काबू नहीं है। कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों के सामने जिक्र और ढंग से होगा। मगर तुम तो अभी से सब-कुछ उगले देती हो। उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी।

प्रेमा : अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी। जैसी तुम्हारी मर्जी हो, करना। बस मुझे तो मेरा काम बता दो।

राम० : तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो। न सही पौडर। वैसे कौन बुरी है। पान लेकर भेज देना उसे। और, नाश्ता तो तैयार है न ? (रतन का आना) आ गया रतन ?. . . .इधर ला, इधर। बाजा नीचे रख दे। चद्दर खोल।. . . .पकड़ तो जरा उधर से।

[चद्दर बिछाते हैं]

प्रेमा : नाश्ता तो तैयार है। मिठाई तो वे लोग ज्यादा खायँगे नहीं। कुछ नमकीन चीजें बना दी हैं। फल रक्खे हैं ही। चाय तैयार है और टोस्ट भी। मगर हाँ, मक्खन ? मक्खन तो आया ही नहीं।

राम० : क्या कहा ? मक्खन नहीं आया ? तुम्हें भी किस वक्त याद आयी है। जानती हो कि मक्खन वाले की दूकान दूर है, पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नहीं। अब बताओ, रतन मक्खन लाये कि यहाँ का काम करे। दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरों के मारे. . . .

प्रेमा : यहाँ का काम कौन ज्यादा है ? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही। बाजा-सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में ट्रे में रक्खा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी। एकाध चीज खुद ले आना। इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आयगा। —दो आदमी ही तो हैं ?

राम० : हाँ एक तो बाबू गोपालप्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो, उमा से कह देना कि जरा करीने से आये। ये लोग जरा ऐसे ही हैं। गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दक़ियानूसी ख्यालों पर। खुद पढ़े-लिखे हैं, वकील हैं, सभा-सोसाइटियों में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज्यादा पढ़ी-लिखी न हो।

प्रेमा : और लड़का ?

राम० : बताया तो था तुम्हें। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी० एस-सी० के बाद लखनऊ में ही तो पढ़ता है, मेडिकल कालेज में। कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा। क्या करूँ मजबूरी है। मतलब अपना है वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी. . . .

रतन : (जो अब तक दरवाजे के पास चुप चाप खड़ा हुआ था, जल्दी-जल्दी) बाबू जी, बाबू जी !

राम० : क्या है ?

रतन : कोई आते हैं।

राम० : (दरवाजे से बाहर झाँककर जल्दी मुँह अन्दर करते हुए) अरे ए प्रेमा, वे आ भी गये। (नौकर पर नजर पड़ते ही) अरे तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ। गया नहीं मक्खन लाने ?. . . सब चौपट कर दिया।. . .अबे उधर से नहीं, अन्दर के दरवाजे से जा (नौकर अन्दर आता है). . . .और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना थोड़ा-सा गा देगी।

[प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ आती है। उसकी धोती जमीन पर रक्खे हुए बाजे से अटक जाती है।]

प्रेमा : ऊँह। यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कमबख्त।

राम० : तुम जाओ, मैं रख देता हूँ।. . . .जल्दी।

[प्रेमा जाती है, बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं। किवाड़ों पर दस्तक।]

राम० : हँ-हँ-हँ। आइए, आइए।. . .हँ-हँ-हँ।

[बाबू गोपाल प्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना। आँखों से लोक-चतुराई टपकती है। आवाज से मालूम होता है कि काफी अनुभवी और फ़ितरती महाशय हैं। उनका लड़का कुछ खीस निपोरने वाले नौजवानों में से है। आवाज पतली है

और खिसियाहट-भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।]

राम० : (अपने दोनों हाथ मलते हुए) हँ-हँ, इधर तशरीफ लाइए, इधर।

[बाबू गोपालप्रसाद बैठते हैं, मगर बेंत गिर पड़ता है।]

राम० : यह बेंत !...लाइए मुझे दीजिए। (कोने में रख देते हैं। सब बैठते हैं।) हँ-हँ-...मकान ढूँढ़ने में कुछ तकलीफ तो नहीं हुई !

गोपाल० : (खखारकर) नहीं। ताँगे वाला जानता था।....और फिर हमें तो यहाँ आना ही था। रास्ता मिलता कैसे नहीं ?

राम० : हँ-हँ-हँ। यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है। मैंने आपको तकलीफ तो दी.....

गोपाल० : अरे नहीं साहब ! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम। आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है। बल्कि यों कहिए कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी !

राम० : हँ-हँ-हँ ! यह लीजिए, आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे। हम तो आपके—हँ-हँ—सेवक ही हैं—हँ-हँ ! (थोड़ी देर बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर) और कहिए, शंकर बाबू, कितने दिनों की छुट्टियाँ हैं ?

शंकर : जी, कालिज की तो छुट्टियाँ नहीं हैं। 'वीक एण्ड' में चला आया था।

राम० : तो आपके कोर्स खत्म होने में तो अब साल-भर रहा होगा ?

शंकर : जी, यही कोई साल-दो साल।

राम० : साल-दो साल ?

शंकर : हँ-हँ-हँ !...जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ...

गोपाल० : बात यह है साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था। क्या बतायें, इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती हैं। एक हमारा ज़माना था कि स्कूल से आकर दर्जनों

कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख !

राम० : कचौड़ियाँ भी तो उस जमाने में पैसे की दो आती थीं।

गोपाल० : जनाब, यह हाल था कि चार पैसे में ढेर-सी बालाई आती थी। और अकेले दो आने की हजम करने की ताकत थी, अकेले ! और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह भी होते हैं स्कूल में। तब न कोई वौलीवॉल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन। बस कभी हॉकी या क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे। मगर मजाल कि कोई कह जाय कि यह लड़का कमजोर है।

[शंकर और रामस्वरूप खीसें निपोरते हैं]

राम० : जी हाँ, जी हाँ, उस ज़माने की बात ही दूसरी थी. . .हँ-हँ !

गोपाल० : (जोशीली आवाज में) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे कि बारह घंटे की 'सिटिंग' हो गयी, बारह घंटे ! जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस जमाने का मैट्रिक भी वह अंग्रेजी लिखता था फ़र्राटे की कि आजकल के एम० ए० भी मुकाबिला नहीं कर सकते !

राम० : जी हाँ, जी हाँ ! यह तो है ही।

गोपाल० : माफ़ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस ज़माने की जब याद आती है, अपने को ज़ब्त करना मुश्किल हो जाता है !

राम० : हँ-हँ-हँ।. . . .जी हाँ वह तो रंगीन ज़माना था, रंगीन ज़माना ! हँ-हँ-हँ !

[शंकर भी हीं-हीं करता है।]

गोपाल० : (एक साथ अपनी आवाज और तरीका बदलते हुए) अच्छा, तो साहब, 'बिज़नेस' की बातचीत हो जाय।

राम० : (चौंककर) बिज़नेस ?—बिजि. . . .(समझ कर) ओह. . . . अच्छा, अच्छा। लेकिन जरा नाश्ता तो कर लीजिए।

[उठते हैं ।]

गोपाल० : यह सब आप क्या तक़ल्लुफ करते हैं !

राम० : हँ-हँ-हँ ! तक़ल्लुफ किस बात का । हँ-हँ ! यह तो मेरी बड़ी तक़दीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ लाये । वरना मैं किस क़ाबिल हूँ । हँ—हँ ! . . . .माफ़ कीजिएगा ज़रा । अभी हाजिर हुआ ।

[अन्दर जाते हैं ।]

गोपाल० : (थोड़ी देर बाद दबी आवाज़ में) आदमी तो भला है । मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती । पता चले, लड़की कैसी है ।

शंकर : जी. . . . . .

[कुछ खखारकर इधर-उधर देखता है ।]

गोपाल० : क्यों, क्या हुआ ।

शंकर : कुछ नहीं ।

गोपाल० : झुककर क्यों बैठते हो ? ब्याह तय करने आये हो, कमर सीधी करके बैठो । तुम्हारे दोस्त ठीक करते हैं कि शंकर की 'बैकबोन'. . . . .

[इतने में बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ में चाय की ट्रे लि हुए । मेज़ पर रख देते हैं ।]

गोपाल० : आख़िर आप माने नहीं !

राम० : (चाय प्याले में डालते हुए) हँ-हँ-हँ ! आपको विलायती चा पसन्द है या हिन्दुस्तानी ?

गोपाल० : नहीं-नहीं साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए और ज़रा चीनी ज्यादा डालिएगा । मुझे तो भई यह नया फै पसन्द नहीं । एक तो वैसे ही चाय में पानी काफ़ी होता है, औ फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाय तो ज़ायका क्या रहे

राम० : हँ-हँ, कहते तो आप सही हैं।
[**प्याला पकड़ाते हैं।**]

शंकर : (खखार कर) सुना है, सरकार अब ज्यादा चीनी लेने वालों पर 'टैक्स' लगायेगी।

गोपाल० : (चाय पीते हुए) हूँ। सरकार जो चाहे सो कर ले, पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए।

राम० : (शंकर को प्याला पकड़ाते हुए) वह क्या ?

गोपाल० : खूबसूरती पर टैक्स ! (रामस्वरूप और शंकर हँस पड़ते हैं।) मज़ाक नहीं साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि देनेवाले चूँ भी न करेंगे। बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाय कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैन्डर्ड' के माफ़िक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले। फिर देखिए, सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है।

राम० : (जोर से हँसते हुए) वाह-वाह ! खूब सोचा आपने ! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है। हम लोगों के जमाने में तो यह कभी उठता भी न था। (तश्तरी गोपालप्रसाद की तरफ बढ़ाते हैं) लीजिए।

गोपाल० : (समोसा उठाते हुए) कभी नहीं, साहब, कभी नहीं।

राम० : (शंकर की तरफ मुखातिब होकर) आपका क्या ख़्याल है शंकर बाबू ?

शंकर : किस मामले में ?

राम० : यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गोपाल० : (बीच में ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आपसे पहले भी कहा था, लड़की का ख़ूबसूरत होना निहायत जरूरी है। कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगाये, चाहे वैसे ही।

बात यह है कि हम आप मान भी जायँ, मगर घर की औरतें तो राजी नहीं होतीं। आपकी लड़की तो ठीक है ?

राम० : जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गोपाल० : देखना क्या। जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

राम० : हँ-हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान हैं। हँ-हँ !

गोपाल० : और ज़ायचा (जन्मपत्र) तो मिल ही गया होगा।

राम० : जी, ज़ायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है। ठाकुर जी के चरणों में रख दिया। बस, खुद-ब-खुद मिला हुआ समझिए।

गोपाल० : यह ठीक कहा आपने, बिल्कुल ठीक (थोड़ी देर रुककर) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह तो ग़लत है न ?

राम० : (चौंककर) क्या ?

गोपाल० : यही पढ़ाई-लिखाई के बारे में !....जी हाँ, साफ बात है साहब, हमें ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की नहीं चाहिए। मेम साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेगा उनके नखरों को। बस हद से हद मैट्रिक पास होनी चाहिए....क्यों शंकर ?

शंकर : जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं।

राम० : नौकरी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता।

गोपाल० : और क्या साहब ! देखिए, कुछ लोग मुझसे कहते हैं, कि जब आपने अपने लड़कों को बी० ए०, एम० ए० तक पढ़ाया है, तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिए। भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है। अरे मर्दों का काम है ही पढ़ना और क़ाबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेजी अखबार पढ़ने लगीं और 'पालिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगीं तब तो हो

चुकी गृहस्थी । जनाब, मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं ।

[शंकर भी हँसता है, मगर गोपालप्रसाद गम्भीर हो जाते हैं ।]

राम० : जी हाँ, और मर्द के दाढ़ी होती है, औरत के नहीं ।. . .हँ. . .हँ . . .हँ. . .!

गोपाल० : हाँ, हाँ । वह भी सही है । कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी ही चीजों में से एक है ।

राम० : (शंकर से) चाय और लीजिए ।

शंकर : धन्यवाद । पी चुका ।

राम० : (गोपालप्रसाद से) आप ?

गोपाल० : बस साहब, अब तो खत्म ही कीजिए ।

राम० : आपने तो कुछ खाया ही नहीं । चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे । क्या बतायें, वह मक्खन—

गोपाल० : नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं । और फिर टोस्ट-वोस्ट मैं खाता भी नहीं ।

राम० : हँ...हँ । (मेज को एक तरफ सरका देते हैं । फिर अन्दर के दरवाजे की तरफ मुँह कर जरा जोर से) अरे, जरा पान भिजवा देना. . . .! . . . .सिगरेट मँगवाऊँ ?

गोपाल० : जी नहीं ।

[पान की तश्तरी हाथों में लिये उमा आती है । सादगी के कपड़े । गर्दन झुकी हुई । बाबू गोपालप्रसाद आँखें गड़ाकर और शंकर आँखें छिपाकर उसे ताक रहे हैं ।]

राम० : हँ. . .हँ ! . . . यही, हँ. . .हँ, आपकी लड़की है । लाओ बेटी पान मुझे दो ।

[उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है। उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है और नाक पर रखा हुआ सोने की रिम वाला चश्मा दीखता है। बाप-बेटे चौंक उठते हैं।]

शंकर और गोपाल० : (एक साथ)——चश्मा !

राम० : (जरा सकपकाकर) जी, वह तो. . .वह. . .पिछले महीने में इसकी आँखें दुखनी आ गयी थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है।

गोपाल० : पढ़ाई-वढ़ाई की वजह से तो नहीं है कुछ ?

राम० : नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज किया न।

गोपाल० : हूँ। (सन्तुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में) बैठो बेटी।

राम० : वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तख्त पर, अपने बाजे-वाजे के पास।

[उमा बैठती है।]

गोपाल० : चाल में तो कुछ खराबी है नहीं। चेहरे पर भी छवि है।. . . हाँ, कुछ गाना-बजाना सीखा है ?

राम० : जी हाँ, सितार भी, और बाजा भी। सुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ।

[उमा सितार उठाती है। थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' गाना शुरू कर देती है। स्वर से जाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है; यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखें शंकर की झेंपती-सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है।]

राम० : क्यों, क्या हुआ ? गाने को पूरा करो उमा।

गोपाल० : नहीं-नहीं साहब, काफी है। लड़की आपकी अच्छा गाती है।

[उमा सितार रखकर अन्दर जाने को उठती है।]

गोपाल० : अभी ठहरो, बेटी।

राम० : थोड़ा और बैठी रहो, उमा ! (उमा बैठती है।)

गोपाल० : (उमा से) तो तुमने पेंटिंग-वेंटिंग भी. . .

उमा : (चुप)

राम० : हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल ही गया। यह जो तसवीर टँगी हुई है, कुत्ते वाली, इसी ने खींची है। और वह उस दीवार पर भी।

गोपाल० : हूँ ! यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई वगैरह ?

राम० : सिलाई तो सारे घर की इसी के जिम्मे रहती है; यहाँ तक कि मेरी कमीजें भी। हँ. . .हँ. . .हँ।

गोपाल० : ठीक।. . .लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते हैं ?

[उमा चुप। रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं। लेकिन उमा चुप है उसी तरह गर्दन झुकाये। गोपालप्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।]

राम० : जवाब दो, उमा ? (गोपाल से) हँ-हँ, जरा शरमाती है, इनाम तो इसने. . . .

गोपाल० : (जरा रूखी आवाज में) जरा इसे भी तो मुँह खोलना चाहिए।

राम० : उमा, देखो, आप क्या कह रहे हैं। जवाब दो न।

उमा : (हल्की लेकिन मजबूत आवाज में) क्या जवाब दूँ बाबू जी ! जब कुर्सी-मेज़ बिकती है तब दूकानदार कुर्सी-मेज़ से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ खरीदार को दिखला देता है। पसन्द आ गयी तो अच्छा है, वरना. . . .

राम० : (चौंककर खड़े हो जाते हैं) उमा, उमा !

उमा : अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी।. . .ये जो महाशय मेरे खरीदार बनकर आये हैं, इनसे जरा पूछिए कि क्या लड़कियों के

दिल नहीं होता ? क्या उनके चोट नहीं लगती ? क्या वे बस भेड़-बकरियाँ हैं, जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख-भालकर खरीदते हैं ?

गोपाल० : (ताव में आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था ?

उमा : (तेज आवाज में) जी हाँ, और हमारी बेइज्जती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे हैं ? और जरा अपने इन साहबजादे से पूछिए कि अभी पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाये गये थे !

शंकर : बाबू जी, चलिए।

गोपाल० : लड़कियों के होस्टल में ?. . .क्या तुम कालेज में पढ़ी हो ? **(रामस्वरूप चुप !)**

उमा : जी हाँ, मैं कालेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी० ए० पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँककर कायरता दिखायी है। मुझे अपनी इज्जत——अपने मान का ख्याल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

राम० : उमा, उमा ?

गोपाल० : (खड़े होकर गुस्से में) बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दग़ा किया। आपकी लड़की बी० ए० पास है, और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइए मेरी छड़ी कहाँ है। मैं चलता हूँ। (छड़ी ढूँढ़कर उठाते हैं।) बी० ए० पास ? उफ्फ़ोह ! गजब हो जाता ! झूठ का भी कुछ ठिकाना है। आओ बेटे, चलो. . . **(दरवाजे की ओर बढ़ते हैं।)**

उमा : जी हाँ, जाइए, जरूर चले जाइए। लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं——यानी बैकबोन, बैकबोन !

[बाबू गोपालप्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुलासापन। दोनों बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम-से बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है। लेकिन उसकी हँसी सिसकियों में तबदील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत में आना।]

प्रेमा : उमा, उमा. . . .रो रही है ?

[यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है।]

रतन : जी, मक्खन. . . .

[सब रतन की तरफ देखते हैं और पर्दा गिरता है।]

भारतभूषण अग्रवाल

महाभारत की साँझ

भारतभूषण अग्रवाल

[जन्म : सन् १९१९]

आपका जन्म मथुरा के एक साधारण परिवार में हुआ और आपकी उच्च शिक्षा आगरा विश्वविद्यालय में। आपको बचपन से ही कविता में रुचि थी। छात्र-जीवन में ही आप प्रगतिशील लेखक संघ के सदस्य बन गए थे और फिर राजनैतिक उथल-पुथल के कारण आपको कई स्थानों में कई तरह के काम करने पड़े। देश के स्वाधीन होने पर आप आकाशवाणी में काम करने लगे। सन् १९६० से आप साहित्य अकादेमी के सहायक सचिव के पद पर काम कर रहे हैं।

डा० अग्रवाल उन सात कवियों में हैं जिन्होंने हिन्दी में प्रयोगवादी कविता का आन्दोलन चलाया, जो बाद में नई कविता के नाम से विख्यात हुई। क्रान्तिकारी विचारधारा के साथ-साथ साहित्य के नए रूपों के प्रयोग आपकी रचनाओं की विशेषता है। यही विशेषता आपके एकांकियों में भी मिलती है जिनमें से अधिकांश रेडियो के लिए लिखे गए थे। 'पलायन' नामक नाटक में आपने गौतम बुद्ध के प्रारम्भिक जीवन का अनूठा विश्लेषण प्रस्तुत किया था जिसको उस समय बहुत प्रशंसा मिली थी। कविता और एकांकी के अतिरिक्त, आपने उपन्यास और कहानियाँ भी लिखी हैं, और हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ भी की हैं।

महाभारत की साँझ

इस एकांकी में महाभारत की प्रसिद्ध कथा के आधार पर दुर्योधन के चरित्र का विश्लेषण करने की चेष्टा की गई है। दुर्योधन को महाभारत का दुष्ट पात्र माना जाता है। पर नए मूल्यों के अनुसार लेखक ने उसके

आचरण को नए रूप में प्रस्तुत करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि उसका व्यवहार सहज और स्वाभाविक था। इस प्रकार यह एकांकी परम्परागत नैतिक मूल्यों की चीरफाड़ करता है और यह बताता है कि मनुष्य के व्यवहार के बहुत-से ऐसे पक्ष होते हैं जो सहज ही दिखाई नहीं देते, पर जिन पर ध्यान देना जरूरी होता है। यह नाटक मूलतः रेडियो के लिए लिखा गया था और यहाँ उसी रूप में प्रकाशित किया जा रहा है पर थोड़े-से ही परिवर्तन से इसे मंच पर भी खेला जा सकता है।

महाभारत की साँझ

पात्र :

१. धृतराष्ट्र

२. संजय

३. युधिष्ठिर

४. भीम

५. दुर्योधन

स्थान :

कुरुक्षेत्र के निकट द्वैतवन के जलाशय का किनारा

समय :

साँझ

[सारंगी पर आलाप उठता है ।]

धृतराष्ट्र : (ठण्डी साँस लेकर) कह नहीं सकता संजय ! किसके पापों का यह परिणाम है, किसकी भूल थी जिसका यह भीषण विष-फल हमें मिला । ओह ! क्या पुत्र-स्नेह अपराध है, पाप है ? क्या मैंने कभी भी. . .कभी भी. . .

संजय : शान्त हों महाराज ! जो हो चुका, उसपर शोक करना व्यर्थ है ।

धृतराष्ट्र : (साँस लेकर) फिर क्या हुआ संजय ?

संजय : आत्म-रक्षा का और कोई उपाय न देखकर महाबली सुयोधन द्वैतवन के सरोवर में घुस गए, और उसके जल-स्तम्भ में छिपकर बैठ रहे । पर न जाने कैसे पाण्डवों को इसकी सूचना मिल गई और वे तत्काल रथ पर चढ़कर वहाँ पहुँच गए. . . .

[रथ की गड़गड़ाहट]

भीम : लीजिए महाराज ! यही है द्वैतवन का सरोवर । वे अहेरी कहते थे कि उन्होंने दुर्योधन को इसी जल में छिपते हुए देखा ।

युधिष्ठिर : आओ, हम लोग उसे बाहर निकालने की चेष्टा करें ।

[जल की कल-कल ध्वनि]

युधिष्ठिर : (पुकारकर) ओ पापी ! अरे ओ कपटी, दुरात्मा दुर्योधन ! क्या स्त्रियों की भाँति यहाँ जल में छिपा बैठा है ! बाहर निकल आ । देख, तेरा काल तुझे ललकार रहा है !

भीम : कोई उत्तर नहीं । (जोर से) दुर्योधन ! दुर्योधन !! अरे, अपने सारे सहयोगियों की हत्या का कलंक अपने माथे पर लगा कर तू कायरों की भाँति अपने प्राण बचाता फिरता है ! तुझे लज्जा नहीं आती ?

युधिष्ठिर : लज्जा ! उस पापी को लज्जा !! —भीमसेन ! ऐसी अनहोनी बात की तुमने कल्पना भी कैसे की ? जो अपने सगे-

सम्बन्धियों को गाजर-मूली की भाँति कटवा सकता है, जो अपने भाइयों को जीवित जलवा देने में भी नहीं हिचकिचाता; जो अपनी भाभी को भरी सभा में अपमानित कराने में आनन्द ले सकता है, उसका लज्जा से क्या परिचय ! (सव्यंग्य हँसी)

दुर्योधन : (दूर जल में से) हँस लो, हँस लो दुष्टो ! जितना जी चाहे, हँस लो, पर यह न भूलना कि मैं अभी जीवित हूँ, मेरी भुजाओं का बल अभी नष्ट नहीं हुआ है !

युधिष्ठिर : (जोर से) अरे नीच ! अब भी तेरा गर्व चूर नहीं हुआ ! यदि बल है तो फिर आ न बाहर, और हमको पराजित करके राज्य प्राप्त कर ! वहाँ बैठा-बैठा क्या वीरता बघारता है ! तू क्या समझता है, हम तेरी थोथी बातों से डर जाएँगे ?

दुर्योधन : अपने स्वार्थ के लिए अपने गुरुजनों, बन्धु-बान्धवों का निर्ममता से वध करनेवाले महात्मा पाण्डवों के रक्त की प्यास अभी बुझी नहीं है, यह मैं जानता हूँ । पर युधिष्ठिर ! सुयोधन कायर नहीं है, वह प्राण रहते तुम्हारी सत्ता स्वीकार नहीं कर सकता ?

भीम : तो फिर आ न बाहर और दिखा अपना पराक्रम ! जिस कालाग्नि को तूने वर्षों घृत देकर उभाड़ा है, उसकी लपटों में तेरे साथी तो स्वाहा हो गए—उसके घेरे से अब तू क्यों बचना चाहता है ? अच्छी तरह समझ ले, यह तेरी आहुति लिये बिना शान्त न होगी ।

दुर्योधन : जानता हूँ युधिष्ठिर ! भली भाँति जानता हूँ । किन्तु सोच लो, मैं थककर चूर हो गया हूँ, मेरी सारी सेना तितर-बितर हो गई है, मेरा कवच फट गया है, मेरे शस्त्रास्त्र चुक गए हैं । मुझे समय दो युधिष्ठिर ! क्या भूल गए, मैंने तुम्हें तेरह वर्ष का समय दिया था ?

युधिष्ठिर : (हँसकर) तेरह वर्ष का समय दिया था ! दुर्योधन ! तुमने तो हमें वनवास दिया था, यह सोचकर कि तेरह वर्ष वन में

रहकर हमारा उत्साह ठण्डा पड़ जाएगा, हमारी शक्ति क्षीण हो जाएगी, हमारे सहायक बिखर जाएँगे और तुम अनायास हम पर विजय पा सकोगे। इतनी आत्म-प्रवंचना न करो !

दुर्योधन : युधिष्ठिर ! तुम तो धर्मराज कहलाते हो। तुम्हारा दम्भ है कि तुम अधर्म नहीं करते। फिर तुम्हारे रहते, तुम्हारी आँखों के आगे ऐसा अधर्म हो, सोचो तो !

भीम : (हँसी) अच्छा, तो अब तुझे धर्म का स्मरण हुआ। सच है, कायर और पराजित ही अन्त में धर्म की शरण लेते हैं।

युधिष्ठिर : अरे पामर ! तेरा धर्म तब कहाँ चला गया था, जब एक निहत्थे बालक को सात-सात महारथियों ने मिलकर मारा था, जब आधा राज्य तो दूर, सुई की नोक के बराबर भी भूमि देना तुझे अनुचित लगा था। अपने अधर्म से इस पुण्यलोक भारत-भूमि में द्वेष की ज्वाला धधकाकर अब तू धर्म की दुहाई देता है। धिक्कार है तेरे ज्ञान को ! धिक्कार है तेरी वीरता को !

दुर्योधन : एक निहत्थे, थके हुए व्यक्ति को घेरकर वीरता का उपदेश देना सहज है युधिष्ठिर ! मुझे खेद है, मैं इसके लिए तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर सकता। पर मैं सच कहता हूँ तुमसे, इस नर-हत्याकांड से मुझे विरक्ति हो गई है। इस रक्त-रंजित सिंहासन पर बैठकर राज्य करने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। तुम निश्चित मन से जाओ और राज्य भोगो। सुयोधन तो वन में, जाकर भगवद्भक्ति में दिन बिताएगा।

भीम : व्यर्थ है दुर्योधन ! तेरी यह सारी कूटनीति व्यर्थ है ! अपने पापों के परिणामों से अब तू किसी भी प्रकार नहीं बच सकता। बाहर निकलकर युद्ध कर, बस यही एक मार्ग है !

दुर्योधन : अप्रस्तुत को मारने से यदि तुम्हें सन्तोष मिलता हो, तो लो मैं बाहर आता हूँ। (जल से निकलकर पास आने तक की आवाज़ें) पर मैं पूछता हूँ युधिष्ठिर ! मेरे प्राणों का नाश कर तुम्हें क्या मिल जाएगा ?

युधिष्ठिर : अरे पापी ! यदि प्राणों का इतना मोह था, तो फिर यह महाभारत क्यों मचाया ? न्याय को ठोकर मारकर अन्याय का पथ क्यों ग्रहण किया ?

दुर्योधन : युधिष्ठिर ! मैंने जो कुछ किया, अपनी रक्षा के लिए ! मैं जीना चाहता था, शान्ति और मेल से रहना चाहता था। मैं नहीं जानता था कि तुम्हारे रहते मेरी यह कामना, यह सामान्य-सी इच्छा भी पूरी न हो सकेगी।

भीम : पाखण्डी ! तुझे झूठ बोलते लज्जा नहीं आती ?

दुर्योधन : ले लो राक्षसो ! यदि तुम्हारी हिंसा इसी से तृप्त होती है तो ले लो, मेरे प्राण भी ले लो ! जब मैं जीवन-भर प्रयास करके भी अपनी एक भी घड़ी शान्ति से न बिता सका, जब मैं अपनी एक भी कामना को फलते न देख सका, तो अब इन प्राणों को रखकर भी क्या करूँगा ! लो, उठाओ शस्त्र और उड़ा दो मेरा शीश !—अब देखते क्या हो ! मैं निहत्था तुम्हारे सम्मुख खड़ा हूँ ! ऐसा सुअवसर कब मिलेगा, मेरे जीवन-शत्रुओ !

युधिष्ठिर : पहले वीरता का दम्भ और अन्त में करुणा की भीख ! कायरों का यही नियम है। परन्तु दुर्योधन ! कान खोलकर सुन लो। हम तुम्हें दया करके छोड़ेंगे भी नहीं, और तुम्हारी भाँति अधर्म से हत्या कर वधिक भी न कहलाएँगे। हम तुम्हें कवच और अस्त्र देंगे। तुम जिस अस्त्र से लड़ना चाहो बता दो। हममें से केवल एक व्यक्ति ही तुमसे लड़ेगा। और यदि तुम जीत गए तो सारा राज्य तुम्हारा ! कहो, यह तो अधर्म नहीं है ? स्वीकार है ?

भीम : इस दुराचारी के साथ ऐसा व्यवहार बिलकुल अनावश्यक है।

दुर्योधन : मैं तो कह चुका हूँ युधिष्ठिर ! मुझे विरक्ति हो गई है। मेरी समझ में आ गया है कि अब प्राणों की तृप्ति की चेष्टा व्यर्थ है। विफलता के इस मरुस्थल में अब एक बूँद आवेगी भी तो सूखकर

खो जाएगी। यदि तुम्हें इसमें सन्तोष हो कि तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा मेरी मृत देह पर ही अपना जय-स्तम्भ उठाए तो फिर यही सही ! (साँस लेकर) चलो, यह भी एक प्रकार से अच्छा ही होगा। जिन्होंने मेरे लिए अपने प्राणों की बलि दी, उन्हें मुँह तो दिखा सकूँगा। (रुककर) अच्छी बात है युधिष्ठिर ! मुझे एक गदा दे दो, फिर देखो मेरा पौरुष !

[लघु विराम]

संजय : इस प्रकार महाराज ! पाण्डवों ने विरक्त सुयोधन को युद्ध के लिए विवश किया। पाण्डवों की ओर से भीम गदा लेकर रण में उतरे। दोनों वीरों में घमासान युद्ध होने लगा। सुयोधन का पराक्रम सबको चकित कर देता था। ऐसा लगता था मानो विजय-श्री अन्त में उन्हींका वरण करेगी। पर तभी श्रीकृष्ण के संकेत पर भीम ने सुयोधन की जंघा में गदा का भीषण प्रहार किया। कुरुराज आहत होकर चीत्कार करते हुए गिर पड़े। (पृष्ठ भूमि में दुर्योधन की कराह)

धृतराष्ट्र : हाय पुत्र ! इन हत्यारों ने अधर्म से तुम्हें परास्त किया। संजय ! मेरे इतने उत्कट स्नेह का ऐसा अन्त ! ! ओह ! मैं नहीं सह सकता। मैं नहीं सह सकता. . . .

संजय : धैर्य, महाराज, धैर्य ! कुरुकुल के इस डगमगाते पोत के अब आप ही कर्णधार हैं।

धृतराष्ट्र : संजय ! बहलाने की चेष्टा न करो। (रुककर) पर ठीक कहा तुमने ! कुरुकुल का कर्णधार ही अन्धा है, उसे दिखाई नहीं देता !

संजय : महाराज ! ठीक यही बात सुयोधन ने कही थी।

धृतराष्ट्र : क्या ? क्या कहा था सुयोधन ने ? कब ?

संजय : जब सुयोधन आहत होकर निस्सहाय भूमि पर गिर पड़े, तो पाण्डव जय-ध्वनि करते और हर्ष मनाते अपने शिविर को लौट

गए। संध्या होने पर पहले अश्वत्थामा आए और कुरुराज की यह दशा देखकर बदला लेने का प्रण करते हुए चले गए। फिर युधिष्ठिर आए। सुयोधन के पास आकर वे झुके और शान्त स्वर में बोले :

[सुयोधन की कराह, जो बीच-बीच में निरन्तर चलती रहती है]

युधिष्ठिर : दुर्योधन ! दुर्योधन !! आँखें खोलो भाई !

दुर्योधन : (कराहते हुए) कौन ? कौन ? युधिष्ठिर ! युधिष्ठिर ! तुम ! तुम आए हो ? क्यों आए हो ? अब क्या चाहते हो ? तुम राज्य चाहते थे वह मैंने दे दिया ? मेरे प्राण चाहते थे, वे भी मैंने दे दिए। अब क्या लेने आए हो मेरे पास ? अब मेरे पास ऐसा कौन-सा धन है जिसके प्रति तुम्हें ईर्ष्या हो ? जाओ, जाओ, दूर हो मेरी आँखों से। जीवन में तुमने मुझे चैन नहीं लेने दिया, अब कम-से-कम मुझे शान्ति से मर तो लेने दो युधिष्ठिर ! जाओ ! चले जाओ !!

युधिष्ठिर : तुमने भूल समझा दुर्योधन ? मैं कुछ लेने नहीं आया ! मैं तो देखने आया था कि. . .

दुर्योधन : कि अन्तिम समय में मैं किस तरह निस्सहाय, निर्बल पशु की भाँति तड़प-तड़पकर अपना दम तोड़ता हूँ ? मेरी मृत्यु का पर्व मनाने आए हो ! मेरी आहों का आलाप सुनने आए हो ! अरे निर्दयी ! तुम्हें किसने धर्मराज की संज्ञा दी ! जो सुख से मरने भी नहीं देता, वही धर्म का ढोल पीटे, कैसा अन्याय है !

युधिष्ठिर : अर्थ का अनर्थ न करो दुर्योधन ! मैं तो तुम्हें शान्ति देने आया था। मैंने सोचा, हो सकता है तुम्हें पश्चात्ताप हो रहा हो ! यदि ऐसा हो, तो तुम्हारी व्यथा हल्की कर सकूँ, इसी उद्देश्य से मैं आया था।

दुर्योधन : हाय रे मिथ्याभिमानी ! अब भी यह दया का ढोंग नहीं छोड़ा ? पर युधिष्ठिर ! तनिक अपनी ओर तो देखो ! पश्चात्ताप तो तुम्हें होना चाहिए ! मैं क्यों पश्चात्ताप करूँगा ? मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है ? मैंने अपने मन के भावों को गुप्त नहीं रखा, मैंने षड्यन्त्र नहीं किया, मैंने गुरुजनों का वध नहीं किया !

युधिष्ठिर : यह तुम क्या कह रहे हो दुर्योधन !

दुर्योधन : (किटकिटाकर) दुर्योधन नहीं, सुयोधन कहो धर्मराज ! सुयोधन ! क्या अब भी तुम्हारी छाती ठण्डी नहीं हुई ? क्या मुझे मारकर भी तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ जो मेरी अन्तिम घड़ी में मेरे मुँह पर मेरे नाम की खिल्ली उड़ा रहे हो ? निर्दयी ! क्या ईर्ष्या में अपनी मानवता भी भस्म कर दी ?

युधिष्ठिर : क्षमा करो भाई ! अब तुम्हें और अधिक कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता, पर मेरे कहने न कहने से क्या, आनेवाली पीढ़ियाँ तुम्हें दुर्योधन के नाम से ही सम्बोधित करेंगी, तुम्हारे कृत्यों का साक्षी इतिहास पुकार-पुकार कर....

दुर्योधन : मुझे दुर्योधन कहेगा, यही न ? जानता हूँ युधिष्ठिर ! मैं जानता हूँ। मुझे मारकर ही तुम चुप नहीं बैठोगे। तुम विजेता हो, अपने गुरुजनों और सगे-सम्बन्धियों के शोणित की गंगा में नहाकर तुमने राज-मुकुट धारण किया है। तुम अपनी देख-रेख में इतिहास लिखवाओगे और उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने से क्यों चूकोगे ! सुयोधन को सदा के लिए दुर्योधन बनाकर छोड़ोगे (कराहकर) उसकी देह को ही नहीं, उसका नाम तक मिटा दोगे। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। (रुक-कर) मेरे मरने पर तुम जो चाहो करना, मैं तुम्हारा हाथ पकड़ने नहीं आऊँगा। पर इस समय, जब तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु मर रहा है, उसे इतना न्याय दो कि उसका मिथ्या अपमान न करो।

युधिष्ठिर : युधिष्ठिर ने सदा ही न्याय दिया है सुयोधन ! न्याय के लिए वह बड़े-बड़े दुःख उठाने से भी नहीं चूका है। सगे-सम्बन्धियों के तड़प-तड़प कर प्राण त्यागने का यह भीषण दृश्य, अबलाओं-अनाथों का यह करुण चीत्कार किसी भी हृदय को दहलाने के लिए पर्याप्त था। पर सुयोधन ! मैं इन संहार के दृश्यों को भी शान्त भाव से सह गया, क्योंकि न्याय के पथ पर जो मिले, सब स्वीकार है !

दुर्योधन : यह दम्भ है युधिष्ठिर ! यह मिथ्या अहंकार है। मैं तुम्हारी यह आत्म-प्रशंसा नहीं सुन सकता, इसे तुम अपने भक्तों के ही लिए रहने दो ! तुम विजय की डींग मार सकते हो, पर न्याय-धर्म की दुहाई तुम मत दो ! स्वार्थ को न्याय का रूप देकर धर्मराज की उपाधि धारण करने में तुम्हें सन्तोष मिलता है तो मिले, मेरे लिए वह आत्म-प्रवंचना है। मैं उससे घृणा करता हूँ।

युधिष्ठिर : स्वार्थ ! दुर्योधन, स्वार्थ !!

दुर्योधन : और नहीं तो क्या ? जिस राज्य पर तुम्हारा रत्ती-भर अधिकार नहीं था, उसको पाने के लिए तुमने युद्ध ठाना, यह स्वार्थ का ताण्डव-नृत्य नहीं तो और क्या है ? भला किस न्याय से तुम राज्याधिकार की माँग करते थे ?

युधिष्ठिर : सुयोधन, मन को टटोलकर देखो। क्या वह तुम्हारे कथन का समर्थक है ! क्या तुम नहीं जानते कि पिता के राज्य पर पुत्र का अधिकार सर्वसम्मत है ? फिर महाराज पाण्डु का राज्य मेरा हुआ या नहीं ?

दुर्योधन : बस, तुम्हारे पास एक यही तर्क है न ! परन्तु युधिष्ठिर, क्या तुमने कभी भी यह सोचा कि जिस राज्य का तुम अधिकार चाहते थे वह तुम्हारे पिता के पास कैसे आया ? क्या जन्माधिकार से ? नहीं। तुम्हारे पिता को राज्य की देखभाल

का कार्य केवल इसलिए मिला कि मेरे पिता अन्धे थे। राज्य-संचालन में उन्हें असुविधा होती। अन्यथा उसपर तुम्हारे पिता का कोई अधिकार न था, वह मेरे पिता का था।

युधिष्ठिर : यह तो ठीक है। पर एक बार चाहे किसी भी कारण से हो, जब मेरे पिता को राज्य मिल गया, तब उनके पश्चात् उसपर मेरा अधिकार हुआ या नहीं ? क्या राज-नियम यह नहीं कहता !

दुर्योधन : राज-नियम की चिन्ता कब की तुमने ? अन्यथा इस बात के समझने में क्या कठिनाई थी कि तुम्हारे पिता के उपरान्त राज्य पर मूल अधिकार मेरे पिता का ही था। वह जिसे चाहते, व्यवस्था के लिए सौंप सकते थे।

युधिष्ठिर : यह केवल तुम्हारा निजी मत है। आज तक किसी ने भी इस प्रकार का कोई सन्देह प्रकट नहीं किया। पितामह भीष्म, महात्मा विदुर, कृपाचार्य अथवा स्वयं महाराज धृतराष्ट्र ने भी कभी ऐसी कोई बात नहीं कही !

दुर्योधन : यही तो मुझे दुःख है युधिष्ठिर कि तथ्य तक पहुँचने की किसी ने भी चेष्टा नहीं की। एक अन्याय की प्रतिष्ठा के लिए इतना ध्वंस किया गया, और सब अन्धों की भाँति उसे स्वीकार करते गए। सबने मेरा हठ ही देखा, मेरे पक्ष का न्याय किसी ने नहीं देखा ! और जानते हो, इसका क्या कारण था ?

युधिष्ठिर : क्या ?

दुर्योधन : सब तुम्हारे गुणों से प्रभावित थे, सब तुम्हारी वीरता से डरते थे। कायरों की भाँति, रक्तपात से बचने के प्रयत्न में वे न्याय और सत्य का बलिदान कर बैठे। वे यह नहीं समझ पाए कि भय जिसका आधार हो, वह शान्ति टिकाऊ नहीं हो सकती।

युधिष्ठिर : गुरुजनों पर तुम व्यर्थ ही कायरता का आरोप कर रहे हो।

यदि मेरे पक्ष में न्याय न होता तो कोई भी मुझको राज्य देने की माँग क्यों करता !

दुर्योधन : तभी तो कहता हूँ युधिष्ठिर कि स्वार्थ ने तुम्हें अन्धा बना दिया है, अन्यथा इतनी छोटी-सी बात क्या तुम्हें दिखाई न पड़ जाती कि जितने धार्मिक और न्यायी व्यक्ति थे, सबने इस युद्ध में मेरा साथ दिया है। यदि न्याय तुम्हारी ओर था तो फिर भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा—सब मेरी ओर से क्यों लड़े ? क्या वे जान-बूझकर अन्याय का साथ दे रहे थे ? यहाँ तक कि कृष्ण जैसे तुम्हारे परम मित्र ने भी मेरी सहायता के लिए अपनी सेना दी। वे चतुर थे, दोनों पक्षों से मैत्री रखना ही उन्होंने अच्छा समझा। ऐसा क्यों हुआ ? बोलो। इसीलिए न कि न्याय वास्तव में मेरी ओर था ?

युधिष्ठिर : सुयोधन ! मैं तुम्हें सान्त्वना देने आया था, विवाद करते नहीं। मैं तो तुम्हारी पीड़ा बँटा लेने आया था। क्योंकि तुम चाहे जो समझो, मेरी इस बात का तुम विश्वास करो कि मैं इस रक्तपात के लिए तैयार न था, यह मेरी कदापि इच्छा नहीं थी।

दुर्योधन : मैं इसका कैसे विश्वास करूँ ? क्या तुम्हारे कह देने से ही ? पर तुम्हारे वचनों से भी सशक्त स्वर है तुम्हारे कार्यों का, तुम्हारे जीवन की गतिविधि का, और वह पुकार-पुकारकर कह रही है कि युधिष्ठिर शोणित-तर्पण चाहता था, युधिष्ठिर खून की होली खेलने के लिए ही सारे अवसर जुटा रहा था। भविष्य को भी तुम चाहो तो बहका सकते हो युधिष्ठिर ! पर सुयोधन को नहीं बहका सकते। क्योंकि उसने अपने बचपन से लेकर अब तक की एक-एक घड़ी तुम्हारी ईर्ष्या के रथ की गड़गड़ाहट सुनते हुए बिताई है, तुम्हारी तैयारियों ने उसे एक रात भी चैन से नहीं सोने दिया।

युधिष्ठिर : सुयोधन ! मुझे लगता है, तुम सुध-बुध खो बैठे हो, तुम प्रलाप कर रहे हो । भला ज्ञान में भी कोई ऐसी असम्भाव्य बातें कहता है ! जो पाण्डव तुमसे तिरस्कृत होकर घर-घर भीख माँगते फिरे, वन-जंगलों की धूल छानते फिरे, उनके सम्बन्ध में भला कौन ज्ञानी व्यक्ति तुम्हारे इस कथन का विश्वास करेगा !

दुर्योधन : मैं जानता हूँ युधिष्ठिर ! कोई विश्वास नहीं करेगा । और करना भी चाहे तो तुम उसे विश्वास न करने दोगे । पर इससे क्या, सत्य को दबाकर उसे मिथ्या नहीं किया जा सकता । बचपन से जब हम लोगों ने एक साथ शिक्षा पाई, तब से आज तक के सारे चित्र मेरी दृष्टि में हरे हैं । पुरोचन को कपट से मारकर तुम पंचाल गए और वहाँ द्रुपद को अपनी ओर मिलाया । तभी तो तुम्हारा बल बढ़ता देखकर पिताजी ने तुम्हें आधा राज्य दिया ।

युधिष्ठिर : मैं तो यही जानता हूँ कि आधे राज्य पर मेरा अधिकार था ।

दुर्योधन : सत्य को ढकने का प्रयत्न न करो युधिष्ठिर ! उसे निष्पक्ष होकर जाँचो । मेरे पास प्रमाणों की कमी नहीं है । आधा राज्य पाकर भी तुमने चैन न लिया, तुमने अर्जुन को चारों ओर दिग्विजय के लिए भेजा । राजसूय यज्ञ के बहाने तुमने जरासन्ध और शिशुपाल को समाप्त किया; यहाँ तक कि जुए में खेल-खेल में भी तुम अपनी ईर्ष्या नहीं भूले, और तुमने चट-से अपना राज्य दाँव पर लगा दिया कि यदि तुम जीते तो तुम्हें मेरा राज्य अनायास ही मिल जाए । वनवास उसी महत्त्वाकांक्षा का परिणाम था, मेरा उसमें कोई हाथ न था ।

युधिष्ठिर : तुमने जिस तरह भरी सभा में द्रौपदी का अपमान किया. . .

दुर्योधन : मेरा अपमान भी द्रौपदी ने भरी सभा में ही किया था । तब तुम्हारी यह न्याय-भावना क्या सो रही थी ? फिर द्रौपदी को दाँव पर लगाकर क्या तुमने उसका सम्मान करने की चेष्टा

की थी ? जिस समय द्रौपदी सभा में आई, उस समय वह द्रौपदी नहीं थी, वह जुए में जीती हुई दासी थी।

युधिष्ठिर : यह तुम कैसी विचित्र बात कर रहे हो ?

दुर्योधन : सत्य को विचित्र मानकर झुठला नहीं सकते युधिष्ठिर ! अपने ही कृत्य से वनवास पाकर भी उसका दोष मेरे ही माथे मढ़ा गया, और फिर उस वनवास का एक-एक क्षण युद्ध की तैयारी में लगाया गया। अर्जुन ने तपस्या द्वारा नये-नये शस्त्र प्राप्त किए; विराटराज से मैत्री कर नये सम्बन्ध बनाए गए, और अवधि पूर्ण होते ही अभिमन्यु के विवाह के बहाने सारे राजाओं को निमन्त्रण भेजकर एकत्र किया गया। युधिष्ठिर ! क्या इस कटु सत्य को तुम मिटा सकते हो ?

युधिष्ठिर : यदि जो कुछ तुम कह रहे हो वह सत्य है, तो सुयोधन, तुम मेरा विश्वास करो कि तुमने प्रत्येक घटना के उलटे अर्थ लगाए हैं। जो नहीं है उसे तुमने कल्पना के द्वारा देखा है। यह सब मिथ्या है।

दुर्योधन : किन्तु यही बात मैं तुम्हारे लिए कह सकता हूँ युधिष्ठिर ! क्योंकि अन्तर्यामी जानते हैं कि मैंने कोई बुरा आचरण नहीं करना चाहा। मैंने एकमात्र अपनी रक्षा की। जब तक तुमने आक्रमण नहीं किया, मैं चुप रहा। जब मैंने देखा कि युद्ध अनिवार्य है, तो फिर मुझे विवश होकर वीरोचित कर्तव्य करना पड़ा।

युधिष्ठिर : अभिमन्यु-वध भी क्या वीरोचित था ?

दुर्योधन : एक-एक बात पर कहाँ तक विचार करोगे युधिष्ठिर ! जब भीष्म, द्रोण और कर्ण का वध वीरोचित हो सकता है, तो फिर अभिमन्यु-वध में ही ऐसी क्या विशेषता थी ? और आज भीमसेन ने मुझे जिस प्रकार पराजित किया है, वही क्या वीरोचित

कहलाएगा ? पर युधिष्ठिर ! मेरे पास अब इतना समय नहीं है कि इन सबकी विवेचना करूँ । मैं तो सबकी सार बात जानता हूँ कि तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा ही इस नर-संहार का, इस भीषण रक्तपात का मूल कारण है । मैं तो एक निस्सहाय, विवश व्यक्ति की भाँति केवल जूझ मरा हूँ । तुम्हारे चक्रान्त में मेरे लिए यही पुरस्कार निर्धारित किया गया था ।

युधिष्ठिर : सुयोधन ! तुम्हें भ्रान्ति हो गई है, तुम सत्य और मिथ्या में भेद करने में असमर्थ हो । तुम्हारे मस्तिष्क की यह दशा सचमुच दयनीय है ।

दुर्योधन : बड़े निष्ठुर हो युधिष्ठिर ! मरणोन्मुख भाई से दुराव करते तुम्हारा जी नहीं पसीजता ! कुछ क्षणों में ही मैं इस लोक की सीमाओं के परे पहुँच जाऊँगा । मेरे सम्मुख यदि तुम सत्य स्वीकार कर भी लोगे तो तुम्हारे राजत्व को कोई हानि न पहुँचेगी । (कराहता है) पर नहीं, मैं भूल गया । तुम तो अपने शत्रु की इस विकल मृत्यु पर प्रसन्न हो रहे होगे । आज वह हुआ जो तुम चाहते थे, और जो मैं नहीं चाहता था । मैंने अपने सम्पूर्ण जीवन का एक-एक पल महत्त्वाकांक्षा की टकराहट से बचने में लगाया । परन्तु तुम्हारे सम्मुख मेरे सारे प्रयत्न निष्फल हुए । वह देखो, वह अँधेरा बढ़ा आ रहा है । साँझ हो रही है, मेरे जीवन की अन्तिम साँझ । (पृष्ठभूमि में सारंगी पर करुण आलाप, जो चढ़ता जाता है ।) और उधर वे मेघ घिरे आ रहे हैं, द्रौपदी के बिखरे केशों की भाँति । वे मुझे निगल लेंगे युधिष्ठिर ! जाओ, जाओ, मुझे मरने दो । तुम अपनी महत्त्वाकांक्षा को फलते-फूलते देखो ! जाओ, गुरुजनों और बन्धु-बान्धवों के रक्त से अभिषेक कर राजसिंहासन पर विराजो ! मैं तुम्हारे चरणों से रौंदे हुए काँटे की भाँति तुम्हारे मार्ग से हटे जाता हूँ ।

युधिष्ठिर : इतने उत्तेजित न हो ओ सुयोधन ! वीरों की भाँति धैर्य रखो । शान्त होओ ।

दुर्योधन : घबराओ नहीं युधिष्ठिर ! मेरी शान्ति के लिए तुम जो उपाय कर चुके हो, वह अचूक है । दो क्षण और, फिर मैं सदा को शान्त हो जाऊँगा । पर अन्तिम साँस निकलने से पहले युधिष्ठिर, एक बात कहे जाता हूँ । तुम पश्चात्ताप की बात पूछने आए थे न ? मेरे मन में कोई पश्चात्ताप नहीं है । मैंने कोई भूल नहीं की । मैंने भय से तुम्हारी शरण नहीं माँगी । अन्त तक तुमसे टक्कर ली और अब वीर-गति पाकर स्वर्ग को जाता हूँ । समझे युधिष्ठिर ! मुझे कोई ग्लानि नहीं है, कोई पश्चात्ताप नहीं है । केवल एक. . .केवल एक दुःख मेरे साथ जाएगा ।

युधिष्ठिर : क्या ?

दुर्योधन : यही. . .यही कि मेरे पिता अन्धे क्यों हुए । नहीं तो, नहीं तो. . . . .

[करुण आलाप उठकर धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है ।]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

दूसरा दरवाज़ा

डा० लक्ष्मीनारायण लाल

[जन्म : सन् १९२५]

डा० लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म अवध के एक ग्रामीण अंचल में हुआ और आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। डा० रामकुमार वर्मा के निरीक्षण में आपने हिन्दी कहानियों पर शोध-कार्य किया। यही कारण है कि डा० लाल के प्रारम्भिक एकांकियों पर रामकुमार वर्मा का बहुत प्रभाव है। शिक्षा पूरी करने के बाद आप इलाहाबाद में और फिर दिल्ली में अध्यापक का काम करते रहे। आपने कुछ दिनों नेशनल बुक ट्रस्ट में सम्पादक के पद पर भी काम किया है। आजकल आप दिल्ली में रहकर स्वतन्त्र रूप से लेखन-कार्य करते हैं।

डा० लाल ने कहानी और उपन्यास भी लिखे हैं, पर नाटक और रंगमंच की ओर आपकी विशेष रुचि है। इलाहाबाद रंगमंच के विकास में भी आपने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। आपको अपने नाटकों पर बहुत-से पुरस्कार मिल चुके हैं और नाटककार के रूप में आपने विदेश-यात्राएँ भी की हैं। आपके नाटक अनेक भाषाओं में अनूदित हो चुके हैं। अपने नाटकों में डा० लाल नए-नए प्रयोगों के हामी हैं जिनके माध्यम से आप आधुनिक जीवन की जटिलता को मंच पर प्रस्तुत करते हैं।

दूसरा दरवाजा

'दूसरा दरवाज़ा' लक्ष्मीनारायण लाल का नया एकांकी है जिसमें अमूर्त नाटक की शैली में आधुनिक मध्यवर्गीय जीवन की निराशा और आर्थिक कुंठा चित्रित की गई है। नाटक में जो कार्य-व्यापार है वह चाहे वास्तविक या यथार्थ न लगे, पर उसके द्वारा नवयुवकों की बेकारी

और हताशा बड़े सशक्त रूप में व्यक्त होती है। लेखक ने यह सिद्ध किया है कि उपयुक्त अवसर के अभाव में हमारी शिक्षा और हमारी आजादी अर्थहीन हो जाती है। आर्थिक स्वतन्त्रता ही वह दूसरा दरवाज़ा है जिसकी नाटक के पात्रों को तलाश है।

दूसरा दरवाज़ा

पात्र :

१. पुरुष

२. पहला युवक

३ दूसरा युवक

४. पहली युवती

५. दूसरी युवती

[एक कमरा। सामने एक बेंच। दायें और बायें दो दरवाज़े। बेंच पर एक पुरुष पुराने अखबार लिये बैठा पढ़ रहा है—बल्कि पृष्ठों को उलट रहा है। बीच-बीच में सहसा उठकर दायें दरवाज़े से भीतर झाँकने की कोशिश करता है, फिर तेज़ी से लौटकर बेंच पर बैठ जाता है। अखबार का अंबार उठाकर बायें दरवाज़े से बाहर निकल जाना चाहता है, पर डरकर फिर बेंच पर आ बैठता है। दोनों दरवाज़ों के बीच बड़ा अशांत दिखता है। धैर्य से बेंच पर लेट जाता है। फिर उठता है। फिर दोनों दरवाज़ों पर झाँकता है।

सहसा तभी दायें दरवाज़ें से पहला युवक जैसे धक्के खाकर निकलता है और लड़खड़ाकर फर्श पर गिर पड़ता है। उसके हाथ के कागज़ात जमीन पर बिखर जाते हैं। वह घबराहट में अपने कागज़ात इकट्ठे करने लगता है।]

पुरुष : चोट तो नहीं लगी ? कुछ मदद करूँ ?

पहला युवक : (चुप। कागज़ात सँभाल रहा है।)

पुरुष : आपको किसी ने धक्का दिया ? मेरा मतलब आप. . .

पहला युवक : (अपने कपड़े ठीक कर रहा है।)

पुरुष : ये कपड़े आपके ही थे ? मेरा मतलब आप. . .।

पहला युवक : आप से मतलब ?

पुरुष : लीजिए, जिसका डर था वही हुआ। आप तो खामखा नाराज़ हो गए। मैं तो सिर्फ यह पूछ रहा था. . .

पहला युवक : आप यहाँ बैठे क्यों थे ?

पुरुष : समझ लीजिए, मैंने आपको गिरते नहीं देखा, बस्स !

पहला युवक : आप हैं कौन ?

पुरुष : देखिए, यह सवाल मैंने आपसे नहीं किया। मैंने सिर्फ यह जानना चाहा कि भीतर से आपको किसी ने धक्का दिया ?

पहला युवक : आपको यह शुबहा कैसे हुआ ?

पुरुष : यह मेरा अनुभव है।

पहला युवक : अनुभव ?

पुरुष : अखबारों में विज्ञापन छपते हैं—वान्टेड. . .आवश्यकता है. . . इतने डॉक्टरों की. . .इन्जीनियरों की. . .अध्यापकों की. . . सहायकों की. . .संपादकों की. . .न्यूज रीडरों की. . .क्लर्कों की. . .। आवश्यक योग्यताएँ—एक-दो-तीन। विशेष योग्यताएँ एक और दो—प्रिफरेन्स विल बी गिवन टू[1]. . .।

पहला युवक : आपकी तबीयत तो ठीक है ?

पुरुष : यही तो मैं आपसे पूछ रहा था—चोट तो नहीं आई ?

पहला युवक : नॉनसेन्स ![2]

पुरुष : भई, मैं किसी से नहीं कहूँगा कि आप यहाँ इस तरह गिर पड़े। मुझे पता है, चोट तभी महसूस होती है, जब कोई देख लेता है। विश्वास रखिए, मैंने आपको नहीं देखा।

पहला युवक : लेकिन मैंने तो आपको देखा !

पुरुष : बताइए भला, इस संयोग के लिए क्या करूँ ? ज्यादा से ज्यादा अब यही हो सकता है कि आप फिर से आइए। चलिए, आइए। अब यही एक मानसिक उपचार है।

पहला युवक : (टाई की नॉट[3] ठीक करता है।)

पुरुष : और एक सिगरेट पी लीजिए। जी हल्का हो जाएगा।

पहला युवक : मैं सिगरेट नहीं पीता।

पुरुष : बहुत अच्छे विद्यार्थी रहे होंगे कालेज में।

पहला युवक : थ्रू आउट[4] फर्स्ट क्लास रहा है मेरा।

पुरुष : बधाई। कांग्रेचुलेशन्स[5]। अब तो कुछ जी हल्का हुआ ?

पहला युवक : आप इण्टरव्यू[6] में आए थे ?

---

१. उन्हें वरीयता दी जायेगी जो. . .। २. बकबास। ३. गाँठ। ४. लगातार। ५. बधाइयाँ। ६. साक्षात्कार।

पुरुष : जी हाँ, वही तो मैं कह रहा था। विज्ञापन––फिर इण्टरव्यू, इण्टरव्यू, और हर इण्टरव्यू के अन्त में ऐसा लगता है, किसी ने पीछे से धक्का देकर बाहर निकाल दिया। देखिए न, यहाँ गले पे कितने निशान हैं उन हाथों के। घुटने देखिए. . .। अक्सर खुजली मच जाती है यहाँ। खुजलाने में मज़ा भी आता है। हाँ, आपको भी आएगा, धीरज रखिए।

पहला युवक : मुझे नौकरी मिल जाएगी।

पुरुष : अगर उनका कोई चमचा न हुआ।

पहला युवक : चमचा ? ह्वाट डू यू मीन बाई चमचा[१] ?. . .

पुरुष : यस सर. . .जी हाँ, चरणस्पर्श. . .यस सर. . .जी हाँ, चरणस्पर्श। नहीं समझे ? भई, जैसे चाय के प्याले में चीनी मिलाने के लिए चम्मच की जरूरत होती है न, वैसे एक चमचा होता है. . .

पहला युवक : पता नहीं।

पुरुष : ये चमचे चारों ओर हवा में इस तरह हर वक्त मौजूद रहते हैं जैसे पानी में आक्सीजन के साथ हाइड्रोजन। आप एम० ए० हैं या एम० एस-सी० ?

पहला युवक : बी० एस-सी० इंजीनिरिंग !

पुरुष : अच्छी डिग्री है। सम्हालकर रखिए। थोड़ा नमक लगाकर चाटा कीजिए, हाज़मा ठीक रहेगा।

पहला युवक : आपको तमीज़ नहीं ?

पुरुष : दरअसल यही देखना चाहता था, आपको गुस्सा आता है या नहीं ?

पहला युवक : बन्द कीजिए बकवास !

पुरुष : होह ! वेरी स्मार्ट[२]।

पहला युवक : थैंक्यू[३] !

१. चमचा से तुम्हारा क्या मतलब हैं ? २. बहुत तेज हो।
३. धन्यवाद।

[तेजी से जाने लगता है, तभी उसी दरवाज़े से उसी तरह दूसरा युवक आ गिरता है ।]

पुरुष : देखिए. . .देखिए. . .देखिए. . .। ओह, आई ऐम सॉरी ![1] हमें देखना नहीं चाहिए । जी, हमने बिल्कुल नहीं देखा आपको इस तरह गिरते हुए. . .यकीन कीजिए ।

पहला युवक : आप. . .

पुरुष : जी आप भी !

दूसरा युवक : आप. . . .

पहला युवक : आई एम सॉरी !

पुरुष : अब बताइए, मैं क्या कहूँ. . .कैसे पूछूँ और बिना पूछे रहा भी नहीं जाता, मगर कुछ कहा भी नहीं जाता। देखिए, मैं तुक तो जोड़ सकता हूँ । पर आपसे कुछ पूछने का तुक नहीं पा रहा हूँ । आप पूछिए. . .इन्हें भी धक्का दिया गया ?

पहला युवक : किसने धक्का दिया ?

दूसरा युवक : हाँ, किसने ?

पहला युवक : मैंने इण्टरव्यू में ऐसा कुछ नहीं कहा ।

दूसरा युवक : मैं तो अपने जवाबों में बहुत काम[2] और क्वायट[3] था. . . समझिए पेशेंस[4] पर कमाण्ड[5] था मुझे ।

पहला युवक : डिसिप्लिन[6] और कान्फीडेंस[7] मेरे ब्लड[8] में है ।

दूसरा युवक : उन्होंने पूछा—'यह नौकरी क्यों करना चाहते हैं ।' मैंने उत्तर दिया—'मुझे यही सबसे ज्यादा पसन्द है ।'

पहला युवक : मैंने उत्तर दिया—'यही मेरे जीवन का उद्देश्य है ।'

पुरुष : मेरा ख्याल है, यह जवाब कुछ ज्यादा ही था ।

दूसरा युवक : मेरी आवाज़ में शुरू से आखिर तक शराफत थी ।

पहला युवक : मेरे जवाब उन्हें बेहद पसन्द आये थे ।

---

१. मुझे अफसोस है । २. शान्त । ३. स्थिर । ४. धैर्य । ५. वश । ६. अनुशासन । ७. विश्वास । ८. खून ।

पुरुष : सबने एक ही किताब पढ़ रखी है—'हाऊ टू सक्सीड इन लाइफ एण्ड इण्टरव्यू ।'[१]

पहला युवक : हमें किसी से क्या मतलब !

दूसरा युवक : हमें अपने काम से काम ।

पहला युवक : हमारा अपना एक लक्ष्य है ।

दूसरा युवक : दैट्स राइट ।[२]

पुरुष : वह लक्ष्य है महज नौकरी. . .दफ्तरों में बुड्ढे होने की तनख्वाह पाना ।

पहला युवक : यह कौन है ?

दूसरा युवक : हमें औरों से क्या मतलब ?

पहला युवक : इक्जैक्टली ![३]

[विराम]

दूसरा युवक : मगर मुझे बड़ा अजीब लगा ।

पहला युवक : मुझे अब तक बड़ा अजीब लग रहा है ।

पुरुष : यह पहला मौका था न, तभी. . .।

पहला युवक : मैंने उनके सारे सवालों के जवाब दिए ।

दूसरा युवक : मुझे सारे जवाब बिलकुल जबानी याद थे ।

पहला युवक : मुझे तो सारे सवालात पहले से ही मालूम थे ।

पुरुष : ऐसा ही होता है ।

दूसरा युवक : क्या बकता है ?

पहला युवक : बेकार !

दूसरा युवक : क्या हमें यहाँ इन्तजार करना होगा ?

पहला युवक : ऐसा कुछ कहा तो नहीं गया । इससे पूछा जाए. . .

दूसरा युवक : आप पूछिए ।

पहला युवक : आप ही पूछिए न !

दूसरा युवक : नहीं आप. . .।

पुरुष : अजी, आप-आप में गाड़ी छूट जाएगी ।

१. साक्षात्कार और जीवन में सफलता कैसे मिले ? २. ठीक है ।
३. बिलकुल ठीक ।

पहला युवक : आपको यहाँ रुकने के लिए कहा गया है ?

पुरुष : मुझे ?

दूसरा युवक : आप भी इण्टरव्यू दे आए हैं ?

पुरुष : हाँ, देता रहा हूँ, करीब ग्यारह सालों से ।

दूसरा युवक : मेरा मतलब इस इण्टरव्यू से है ।

पुरुष : अब मैं इण्टरव्यू नहीं देता । आप शौक से कह सकते हैं, मैं बुलाया नहीं जाता । ओवरएज ।[1] पर मुझे भाग्य में विश्वास है. . .एक ज्योतिषी ने लिखकर दिया है— 'ओवरएज के बावजूद एक दिन आप नौकरी में रख लिये जाएँगे ।' आपको यकीन हो या न हो, उसने बता रखा है. . .जब राहु की दशा खत्म होकर सूर्य अपने घर से निकलकर दाएँ वाले घर में प्रवेश करेगा तो एक दिन अचानक ऐसा होगा कि इण्टरव्यू में सारे कैंडीडेट[2] रिजेक्ट[3] कर दिए जाएँगे और मैं बिना इण्टरव्यू के रख लिया जाऊँगा।

पहला युवक : वाह !

पुरुष : अजी, मुझे सब रहस्य मालूम है । मसलन, मुझे यहाँ तक पता है—आपसे पहला सवाल यह पूछा गया होगा कि आपके पिता क्या हैं ?

दोनों : दैट्स राइट !

पुरुष : यह भी पूछा गया होगा—आप शादीशुदा हैं या. . .?

पहला युवक : यह तो एप्लीकेशन फार्म[4] में बता दिया गया है ।

दूसरा युवक : अनमैरिड ![5]

पुरुष : देखिए न, एप्लीकेशन फार्म कोई नहीं पढ़ता । न डिग्रियों को देखा जाता है न डिप्लोमा । जी हाँ । और यह भी पूछा गया होगा—आपके जीवन का लक्ष्य क्या है ?

पहला युवक : जीहाँ, मैंने बताया—भारत का एक आदर्श नागरिक बनना !

---

१. उम्र की सीमा पार कर चुका हूँ । २. प्रत्याशी । ३. रद्द । ४. अर्ज़ी । ५. अविवाहित ।

दूसरा युवक : यही उत्तर तो मैंने भी दिया।

पुरुष : बिल्कुल ! इससे बढ़कर आदर्श उत्तर और क्या हो सकता है ? सुनिए, यह भी पूछा गया होगा, कि आप क्रान्ति में विश्वास रखते हैं या सुधार में ?

पहला युवक : जी, सुधार में...यहाँ तक कि मैंने सर्वोदय का भी नाम लिया।

दूसरा युवक : मैंने पार्लियामेंट्री डिमोक्रेसी[1] कहा।

पुरुष : देखिए न, फिर आप लोगों को धक्का देकर क्यों निकाला गया ?

पहला युवक : देखिए महाशय जी, आपने कहा था, यह धक्के वाली बात आप कभी नहीं कहेंगे।

दूसरा युवक : ये हमारी निजी बातें हैं। और दरअसल धक्का तो किसी ने नहीं दिया।

पहला युवक : बिल्कुल।

पुरुष : अजी...मैं अपनी बात कह रहा हूँ—ऐसा बार-बार महसूस हुआ कि किसी ने गर्दन चाँपकर बेरहमी से धक्का दिया।

दूसरा युवक : पता नहीं।

[**विराम**]

पहला युवक : अब चलना चाहिए।

दूसरा युवक : गुडबाई ![2]

पहला युवक : आप नहीं चलेंगे ?

दूसरा युवक : चलिए, मैं आता हूँ।

[पहला युवक बायें दरवाज़े पर जाता है और भयभीत पीछे मुड़ता है।]

दूसरा युवक : क्या हुआ ? बात क्या है ?

पहला युवक : मुझे अजीब डर लगा...अजीब भयानक...डरावना !

---

1. संसदीय गणतंत्र। २. नमस्ते।

दूसरा युवक : क्या ?
पहला युवक : मैं कुछ बयान नहीं कर सकता।
पुरुष : आप तो इस कदर काँप रहे हैं।
पहला युवक : इधर जाना खतरनाक है।

[पहला युवक बेंच पर जा बैठता है।]

पुरुष : अजी मैं देखता हूँ।

[उठकर जाता है।]

पुरुष : अरे. . .कमाल है. . .इधर तो ऐसा कुछ भी नहीं। बाहर बरामदा है. . .बरामदे के बाहर लॉन[1] है। लॉन के ऊपर नीला आसमान. . .लॉन के चारों ओर फूलों के पेड़ पर दो कौए बैठे मजे से काँव-काँव कर रहे हैं। मेरा ख्याल है यह मिस्टर एक्स 'पेरानौइया' के मरीज हैं।
पहला युवक : शटअप। आई एम नॉट मिस्टर एक्स ![2]
पुरुष : अच्छा 'वाई' सही।
पहला युवक : कीप क्वायट ![3]
पुरुष : अच्छा अच्छा, मिस्टर 'ज़ेड' सही।
पहला युवक : आई से, शटअप ![4]
पुरुष : मिस्टर आप ही देख लीजिए. . .यह तो खामखा मुझ पर लाल-पीले हो रहे हैं।
पहला युवक : अगर तुम सामने पड़ गए होते तो यहाँ बेहोश गिरते।
दूसरा युवक : ऐसा !
पहला युवक : हाँ हाँ, ऐसा।
पुरुष : अजी वहम है इनका . . .वही पेरानौइया।
पहला युवक : तुम चुप रहते हो या नहीं !
पुरुष : तो आप से तुम पर आ गए। सच है, डर इन्सान को करीब ला देता है। यकीन रखिए, मैं भाषण नहीं दूँगा।

---

१. घास का मैदान। २. चुप रहो। मैं मिस्टर एक्स नहीं हूँ।
३. चुप रहो। ४. मैं कहता हूँ। चुप हो जाओ।

पहला युवक : (भयभीत है ।)

पुरुष : जाइए साहब, आप देखिए, वरना इनका वहम दूर न होगा । जाइए न, डरते क्यों हैं ?

दूसरा युवक : अजी कैसा डर. . .मैं एन० सी० सी० में कैप्टन रहा हूँ ।

पुरुष : शाबाश ! कुइक मार्च. . .लेफ्ट राइट. . .लेफ्ट. . .।

पहला युवक : बन्द करो मज़ाक !

पुरुष : अरे !

[दूसरा युवक दरवाज़े पर बढ़ता है । वह जैसे आहत हो चीख पड़ता है ।]

दूसरा युवक : (भयभीत) हू हू हू हू हू. . .हू. . .!

पहला युवक : (चीखता है) पुलिस. . .पुलिस !

पुरुष : (संभालता है) आइए. . .आइए. . .यहाँ बैठिए. . .। बहुत चोट लग गई । लीजिए रूमाल से बाँध लीजिए ।

पहला युवक : किस चीज़ से मारा ?

दूसरा युवक : लोहे के रॉड[1] से. . .।

पुरुष : लोहे के रॉड से ? पर मैंने नहीं देखा ।

पहला युवक : तुम अन्धे हो ।

पुरुष : हो सकता है ।

पहला युवक : अब जाओ तुम !

पुरुष : क्यों नहीं. . .क्यों नहीं । (सहसा) पर मैं किसी के कहने से क्यों जाऊँ ? मैं एक आज़ाद इन्सान हूँ । मैं किसी का नौकर नहीं ।

पहला युवक : अच्छा, आप अपनी ही खुशी से जाइए !

पुरुष : मेरी खुशी मेरी है ।

दूसरा युवक : (चीखता है) तो खुदकुशी करो ना !

पुरुष : वाह वाह वाह ! मुझे अभी नौकरी लेनी है ।

---

१. छड़

पहला युवक : आप तो किसी के नौकर नहीं ।

पुरुष : वह मेरी खुशी है. . .बल्कि मेरी आज़ादी है,. . .मैं चाहूँगा तभी नौकरी करूँगा । आप नहीं समझे । मेरी खुशी. . . मेरा चाहना. . .मेरी आज़ादी (सहसा) ओह, आपके बहुत दर्द हो रहा है । मैं कहता हूँ, यह दर्द आपके चाहने न चाहने पर मुनहसर करता है । आप न चाहें तो यह दर्द नहीं होगा ।

दूसरा युवक : आपने देखा था. . .कितने लोग थे ?

पहला युवक : गिन नहीं पाया । कित्ते लोग थे ?

दूसरा युवक : सिर्फ कुछ शक्लें देखीं. . .पहचानना चाहा तभी यह चोट. . .।

पहला युवक : किसी ने बाकायदा मारा ?

दूसरा युवक : कुछ नहीं कह सकता. . .बस्स ।

पहला युवक : कित्ता अजीब है !

पुरुष : अजी, लोग कहेंगे यह बच्चों की कहानियाँ हैं. . .और हँसेंगे ! (विराम) मगर हाँ, मैं कहे देता हूँ—मैं अब तक विचलित नहीं । मुझे भरोसा है, यकीन है, विश्वास है—दिस इज़ माई फेथ[1]. . .जो भाग्य में होता है वही होता है । इस क्षण आपको एक दैवी चोट पहले से निश्चित थी. . . .।

दूसरा युवक : दैवी नहीं. . .हाड़-मांस के लोग । जाकर देखते क्यों नहीं ?

पुरुष : मैं किसी का गुलाम नहीं । जाऊँगा तो अपनी इच्छा से . . .न जाऊँगा तो भी अपनी मर्जी से । यहाँ मैं अपनी मर्जी से ही आया था । आप लोग यहाँ बुलाने से आए थे । मतलब समझ लीजिए, हाँ ।

[सन्नाटा]

---

१. यह मेरा विश्वास है ।

पहला युवक : आपकी वह इच्छा कब होगी ?

पुरुष : मेरी मर्जी. . .जब मैं चाहूँगा।

पहला युवक : कब चाहेंगे ?

पुरुष : दिस इज़ नन ऑफ योर बिज़नेस ![1]

दूसरा युवक : डैम. . .![2]

[सन्नाटा]

पुरुष : कोई मुझसे अगर यह पूछता है कि मेरी इच्छा क्या है. . . कब होगी—मैं इसे अपनी निजी स्वतन्त्रता पर सरासर आक्रमण समझता हूँ।

[दोनों युवक एक किनारे खड़े हो गए हैं। पुरुष फिर अपनी बेंच पर जा बैठता है।]

पहला युवक : मैं अपने घर से बिल्कुल ठीक वक्त पर चला था। मुझे ऐसा कोई अन्देशा नहीं था।

दूसरा युवक : मैं अपनी घड़ी देखकर चला था, और सीधे यहीं आया।

पहला युवक : न मेरी किसी से दुश्मनी है न दोस्ती।

दूसरा युवक : मुझे तब तक अपने जीवन का लक्ष्य याद था।

पहला युवक : मुझे अब सब कुछ धुँधला नज़र आ रहा है।

दूसरा युवक : मुझे सीधे डाक्टर के पास जाना होगा।

पहला युवक : क्या हम पुलिस को फोन नहीं कर सकते ?

दूसरा युवक : हमें यहाँ चारों ओर से काट दिया गया है।

पहला युवक : और यह महाशय अपने को आजाद कहते हैं।

पुरुष : देखिए, आजादी एक मानसिक सत्य है। अगर मैं आपके कहने में आता तो अपनी आजादी से हाथ धो बैठता।

पहला युवक : क्या हम तीनों मिलकर मुकाबिला नहीं कर सकते ?

पुरुष : किसी से मिलने के मतलब हैं अपने व्यक्तित्व की विशेषता खोना।

---

1. इससे आपको कोई मतलब नहीं। २. छत्तेरे की।

दूसरा युवक : भाड़ में जाओ !

पुरुष : किसी के कहने से क्यों जाऊँ ?

[दायें दरवाज़े से ठहाका मारकर हँसती हुई पहली युवती का प्रवेश ।]

पुरुष : अरे, हँसना तो बन्द करो । आजकल की लड़कियाँ भी कमाल हैं !

युवक : अरे रे रे !

दूसरा युवक : अजीब है !

पहली युवती : पूछते हैं. . .'आप किसी जगह टिकती क्यों नहीं ?' मैंने वह जवाब दिया कि मुँह देखते रह गए ।

पहला युवक : क्या जवाब दिया ?

पहली युवती : मुँहतोड़ जवाब !

दूसरा युवक : बताइये न !

पहली युवती : 'बेशर्म, हर लड़की बदचलन नहीं हो सकती ।'

पुरुष : मगर इसके पहले उन्होंने पूछा होगा, 'आपका एक्स-पीरियेंस[1] क्या है ?'

पहली युवती : मेरा एक्सपीरियेंस यह है कि डिग्री और योग्यता कुछ नहीं है. . .असल चीज़ है. . .कोई कितना झुक सकता है. . .कोई कितना बिक सकता है ।

पहला युवक : आपमें कितना साहस है !

दूसरा युवक : बड़ी बोल्ड[2] है ।

पहली युवती : इत्ती चापलूसी की जरूरत मुझे नहीं । ऐसा एक दिन अपने आप हो जाना पड़ता है ।

पहला युवक : मगर तब नौकरी ?

दूसरा युवक : भविष्य ?

---

१. अनुभव । २. बहादुर ।

पहली युवती : मुझे नौकरी और भविष्य नहीं, परिवर्तन चाहिए ।... नहीं समझे ? वे लोग भी नहीं समझे...इसे कोई नहीं समझता । घर में अपनी बोरियत से बचने के लिए मैंने एम० ए०, बी० टी०, बी० एड०, फिर लाइब्रेरी डिप्लोमा किया । नौकरियाँ कीं...लेकिन एक से दूसरे में कोई फर्क नहीं । जैसे बी०ए० और एम०ए० में कोई फर्क नहीं । जैसे एक नौकरी से दूसरी नौकरी में कोई फर्क नहीं । और उदाहरण दूँ ?

पुरुष : हाँ, चुप रहने से तो अच्छा ही है, आप बोलती रहें । आखिर आप लोगों के जीवन का मात्र लक्ष्य है—दूसरों को प्रभावित करना, बस्स !

पहली युवती : यह बौड़म आदमी कौन है ?

[दोनों युवक हँसने लगते हैं ।]

पहला युवक : इसे गुस्सा नहीं आया ।

दूसरा युवक : कैसा नार्मल[1] आदमी है !

पुरुष : हाँ हाँ, आप लोग कुछ भी कहें, कुछ भी करें, मैं अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को हाथ से नहीं जाने दूँगा । याद रखिए, स्वतन्त्रता मेरे लिए धर्म है ।

पहली युवती : अर्थात्, धर्म तुम्हारे लिए राजनीति है ।

पुरुष : यह आपकी स्वतन्त्रता है ।

पहली युवती : स्वतन्त्रता मेरे लिए महज़ राजनीति है ।

पुरुष : कोई और बात कीजिए ।

पहली युवती : और बातें महज मौसम की हो सकती हैं ।

पुरुष : मौसम भगवान की माया है ।

पहला युवक : और इस कमरे का वातावरण ?

पुरुष : यहाँ उसकी इच्छा के बिना एक पत्ता नहीं हिलता ।

---

१. स्वस्थ ।

[दोनों युवक युवती से अलग पूरी स्थिति चुपचाप बताते हैं। युवती पूरी स्थिति को समझती है।]

पुरुष : मुझे पता है, आप लोग चुपचाप क्या खिचड़ी पका रहे हैं। मुझ पर इसका कोई असर नहीं। मेरी जो मर्ज़ी होगी वही करूँगा।

पहली युवती : आपकी मर्ज़ी या इच्छा का मालिक कौन है? मेरा मतलब, इसे आपके भीतर कौन पैदा करता है?

पुरुष : (हँसता है।) देखिए आप मुझे बातों में फँसाने की कोशिश मत कीजिए. . .मैं सारा चक्कर समझता हूँ। आप यही साबित करना चाहती हैं न कि मनुष्य की इच्छा का सम्बन्ध उसकी बाहरी परिस्थितियों से—ऑब्जेक्टिव रियल्टी[1] से है?

पहली युवती : नहीं।

पुरुष : भाग्य में ही कर्म है और कर्म में ही भाग्य है।

पहली युवती : बौड़म!

पुरुष : देखिए, यह पहले से निश्चित था कि हम लोग यहाँ इस तरह इकट्ठा होंगे और आप मुझे अपशब्द कहेंगी।

पहला युवक : फिर आप स्वतन्त्र कहाँ हैं. . .अगर सब कुछ इस तरह पहले से निश्चित है?

पुरुष : यही तो बात है जनाब, तभी मैं स्वतन्त्र हूँ।

दूसरा युवक : बड़ा अजीब है!

पहला युवक : इसका अटूट विश्वास देखो।

पहली युवती : विश्वास नहीं, अन्धविश्वास!

पुरुष : छोड़िए, इन बातों में क्या रखा है! यह बताइये, और क्या-क्या पूछा गया आपसे।

पहली युवती : आप यहाँ खड़े होइए फिर बताऊँ. . .चलिए उधर।

---

१. वस्तुगत यथार्थ।

[पहली युवती बेंच पर बैठ जाती है और वह जैसे पुरुष से इंटरव्यू लेने लगती है ।]

पहली युवती : आपका नाम ?

पुरुष : लिखा है, पढ़ लीजिए ।

पहली युवती : अपना नाम बताने में शर्माती हैं ?

पुरुष : ऐसा ही समझ लीजिए ।

पहली युवती : आपकी उमर ?

पुरुष : वह भी लिखा है—कालम नम्बर तीन में ।

पहली युवती : शादी के बारे में आपके क्या ख्यालात हैं ?

पुरुष : शादी अच्छी चीज है, इससे इन्सान की सेहत ठीक रहती है ।

पहली युवती : आप पहले टीचर[१] थीं. . .फिर एक एडवरटाइजिंग फर्म[२] में थीं. . .फिर कुछ दिनों बेकार रहीं. . .फिर रिसर्च[३] करने लगीं. . .आपके रिसर्च का सब्जेट[४] क्या था ?

पुरुष : चीन का प्राचीन इतिहास. . .।

पहली युवती : ह्वाट नानसेन्स[५]. . .यह सब्जेक्ट आपको किसने दिया ?

पुरुष : बस, मिल ही गया ।

पहली युवती : अच्छा हुआ आपने रिसर्च छोड़ दिया ।

पुरुष : जी, उस टीचर से मेरी शादी हो गयी, जो मेरा गाइड[६] था ।

[दोनों युवक हँसते हैं ।]

पुरुष : देखिए, ये लोग ही-ही कर रहे हैं । मुझे शरम आती है ।

पहली युवती : आर्डर आर्डर. . .[७]

पुरुष : बस. . .बस. . .खत्म !

पहला युवक : शी. . .शोर नहीं । वे लोग दरवाज़े पर झाँक रहे हैं !

दूसरा युवक : (भयभीत) सावधान ! वे लोग कमरे में घुस आ सकते हैं । मत देखो उधर । आओ, हम लोग दीवार की ओर. . . .

---

१. अध्यापिका । २. विज्ञापन-संस्था । ३. शोध कार्य । ४. विषय ५. बिलकुल बेहूदा । ६. निदेशक । ७. शान्ति, शान्ति ।

[दोनों दीवार की ओर मुँह करके चुपचाप खड़े हो जाते हैं ।]

पहली युवती : कमाल है, आपको मेरे सारे सवालात मालूम हैं !

पुरुष : (भयभीत) शी !...

पहली युवती : (हँसती है ।)

तीनों : शी ! !

[सन्नाटा]

पुरुष : (सहसा) लेकिन हमें...इस तरह चुप नहीं रहना चाहिए..।

दोनों : शी ! !

[पहली युवती बायें दरवाज़े पर झाँकती है]

पहली युवती : हाँ हाँ, मैंने भी देखा ।

तीनों : कौन हैं वे ? क्या हैं ?

पहली युवती : वे लोग बुला रहे हैं मुझे !

पहला युवक : नहीं नहीं...नहीं !

दूसरा युवक : मत जाओ...वे हत्यारे हैं !

पुरुष : शी !...चुप रहो । वे शायद वही लोग हैं जो हत्या की राजनीति में विश्वास करते हैं ।

[सन्नाटा ।]

तीनों : शी ! !

पहली युवती : ओह, तुम भी इत्ते डर गए ? कहाँ गई तुम्हारी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ?

पुरुष : इस समय यही है मेरी इच्छा ।

पहली युवती : इच्छा से डरा भी जाता है ?

पहला युवक : (धीरे-से) शी ! !...कोई झाँक रहा है !

दूसरा युवक : उधर मत देखो ।

पहली युवती : वे इशारे कर रहे हैं ।

[भीतर से बेतरह रोती हुई दूसरी युवती आती है।]

सभी : अरे. . .क्या हुआ ?

पुरुष : मेरा ख्याल है, पहले इन्हें खूब रो लेने दिया जाए।

पहली युवती : बको मत !

पुरुष : आप किसी की आजादी पे डाका डालना चाहती है ?

पहली युवती : प्लीज़[1] सुनिए तो. .शान्त होइए. .डोंट बी ए चाइल्ड[2]।

दूसरी युवती : उन लोगों ने मेरा अपमान किया। जो-जो कहा, मानती गई, फिर भी !

पहला युवक : (आपस में) क्या-क्या कहा होगा ?

दूसरा युवक : (परस्पर) हाँ, क्या कहा होगा ?

दूसरी युवती : मैंने किससे-किससे दोस्ती की। उनसे सिफारिश कराई।

पहली युवती : अब सिर्फ एक ही चीज है—भय।

पुरुष : सबकी आज़ादी लूटना चाहती हो !

पहली युवती : कैसी आज़ादी ? बताओ यहाँ कौन है आज़ाद ?

पुरुष : कौन आज़ाद नहीं है ?

पहली युवती : दिन-रात चारित्रिक पतन देखते-देखते जड़ होते जा रहे हैं. . .यही है हमारी आज़ादी !

दोनों युवक : शी ! !

[सन्नाटा]

पहली युवती : बन्द करो रोना !

दूसरी युवती : मेरी माँ विधवा है. . .मेरे दो छोटे-छोटे भाई हैं। मेरे लिए नौकरी जीवन-मरण का सवाल है।

पहली युवती : पर बुनियादी सवाल कुछ और है—तुम समझतीं क्यों नहीं ?

दूसरी युवती : मेरी समझ में और कुछ नहीं आता।

---

१. कृपया। २. बच्ची मत बनो।

पहली युवती : हमें नौकरी और शादी के अलावा और कुछ बताया नहीं गया।

[सन्नाटा]

पुरुष : आपने उन्हें बताया—शादी अच्छी चीज़ है, इससे सेहत अच्छी रहती है. . .इस पर उन्होंने क्या कहा ?

पहली युवती : आपको तो सब मालूम है।

पुरुष : मुझे सिर्फ आपके जवाब मालूम हैं....उनके रिएक्शन[१] नहीं।

पहली युवती : उन्होंने कहा—'देखिए न, हम सब शादी-शुदा हैं, पर हमारी सेहत नहीं. . .किसी को ब्लड प्रेशर[२] है, किसी को हार्ट ट्रबल,[३] किसी को पेप्टिक अल्सर[४]। मैंने कहा—'आप सब बेईमान हैं—इसीलिए बीमार हैं।'

पुरुष : आपने ऐसे ऊटपटाँग उत्तर दिए तभी इसकी यह दशा हुई। आपका गुस्सा उन्होंने इस गरीब लड़की पर उतारा।

पहली युवती : तुम हमें लड़ाना चाहते हो।

पुरुष : पर यह हकीकत है।

दूसरी युवती : वे लोग बेहद गुस्से में थे।

पहली युवती : तुमने चप्पल क्यों नहीं दे मारी ?

दूसरी युवती : तूने आग लगाई, वरना मुझे नौकरी मिल जाती !

पहली युवती : झूठ। इन्टरव्यू फार्स[५] था !

दूसरी युवती : नहीं, नहीं।

पहली युवती : नौकरी पहले ही किसी को दे दी गई है।

दूसरी युवती : चुड़ैल. . !

[दूसरी युवती पहली युवती पर टूट पड़ती है और पागलों की तरह उसे नोचने लगती है।]

पहली युवती : (अपने को बचाती हुई) मारो, मारो, इस दगाबाज़ को !

[दोनों युवक पुरुष पर पिल पड़ते हैं। चीख और शोर

---

१. प्रतिक्रिया। २. रक्त चाप। ३. दिल की बीमारी। ४. पेट में फोड़ा। ५. स्वाँग।

से सारा वातावरण भर जाता है । तभी बायें दरवाज़े पर से कई मुखों से एक भयानक स्वर--'हप्प' फूटता है । सब भयभीत मूर्तिवत् खड़े रह जाते हैं ।]

पुरुष : हमें ईश्वर को याद करना चाहिए । सिर्फ वही हमें बचा सकता है ।

पहला युवक : ईश्वर क्या है ?

दूसरा युवक : हमने एक कैलेंडर में उसका चित्र देखा था ।

पुरुष : उसके असख्य हाथ और मुख हैं ।

पहली युवती : तभी यहाँ भोजन-वस्त्र का अकाल है ।

दूसरी युवती : सुना है, डाइरेक्टर जनरल का अपना कोई कैंडीडेट[1] नहीं था, इसीलिए यह जगह फिर से एडवरराइज़[2] की जाएगी ।

पहली युवती : और फिर वही फार्स होगा । जिसमें होंगे दो हीरो, दो हीरोइन. . .और एक विलन. . .

पुरुष : मुझे विलन कहती हैं ?

पहली युवती : नहीं जनाब, आप तो युवती हैं. . .विलन मैं हूँ ।

दोनों युवक हँसते हैं, पुरुष 'शी !' करता है ।

पहली युवती : पर डरने से क्या होगा ?

दूसरी युवती : तुम्हें क्या,. . .कोई जिम्मेदारी नहीं. . .कोई कमी नहीं । मैं भी तुम्हारी तरह खूबसूरत, स्मार्ट होती तो. . .।

पहली युवती : अब तक आत्महत्या कर चुकी होतीं ।

पहला युवक : शी ! ! धीरे-धीरे ।

[सन्नाटा]

दूसरी युवती : दस रुपये उधार लिये. . .यह जूड़ा बनवाने में. . .दो घंटे तक सैलून की क्यू में. . .। टैक्सी में आई. . .ताकि मेक अप न बिगड़े ।

पहली युवती : किसने कहा यह सब करने को ?

---

1. प्रत्याशी । २. विज्ञापित ।

दूसरी युवती : माँ ने कल से ही व्रत रखा है ।

पुरुष : इन्सान को आस्थावान होना ही चाहिए ।

पहला युवक : कद्दू होना चाहिए ।

दूसरा युवक : गधा होना चाहिए ।

पहली युवती : बन्दूक, पिस्तौल. . .डैगर[१] होना चाहिए !

दूसरी युवती : प्लीज़ मुझे जरा बाहर तक पहुँचा आइए ।

[किसी का साहस नहीं होता । दूसरी युवती अकेली बाहर जाने लगती है, सहसा चीखकर लौटती है ।]

सभी : क्या देखा ? क्या था ? कैसे लोग थे ? जानवर ? कुछ लोग ?

पहली युवती : खामोश ! उसका कोई परिचय नहीं ।

पुरुष : तुमने देखा है ?

पहली युवती : हम सबने देखा है. . .हर रोज़ देखते हैं, दफ्तर, अस्पताल, स्कूल, कालेजों से लेकर मन्दिर, गुरुद्वारे और अदालतों तक ।

पहला युवक : क्या ?

दूसरा युवक : क्या ?

पुरुष : शी ! !

दूसरी युवती : शी ! !

पहली युवती : एक सर्वग्रासी निराशा. . .!

[ठहाका मारकर हँस पड़ती है । शेष सभी भयभीत हैं । दोनों युवक और दूसरी युवती एक किनारे खड़े होकर ।]

पहला युवक : इसे जरा भी डर नहीं ।

दूसरा युवक : बड़ी बहादुर है ।

दूसरी युवती : खाक है ! शो आफ़[२] करती है ।

पहला युवक : इसने कितनी नौकरियाँ छोड़ी हैं ।

---

१. छुरी । २. दिखावा ।

दूसरा युवक : कितनी पढ़ी-लिखी है !

[पुरुष भी आकर इस मंडली में शामिल होता है ।]

पुरुष : जी, और क्या हाल-चाल हैं ?

[पहली युवती भी आती है ।]

पहली युवती : इस कदर चुप क्यों ? इस शून्य को भरने के लिए बातों से बेहतर चीज और क्या हो सकती है ?

पहला युवक : कित्ता गंदा वक्त आ गया है !

पहली युवती : कोई और बात नहीं कर सकते ?

[सन्नाटा ।]

दूसरी युवती : यह नौकरी तेरी वजह से गई ।

पुरुष : यह नौकरी तेरी वजह से गई ।

पुरुष : यही ख्याल मेरा भी है ।

पहली युवती : कोई और ख्याल ?

[सन्नाटा ।]

पहला युवक : मेरे पाँव काँप रहे हैं ।

दूसरा युवक : आई ऐम ऐक्ज़ास्टेड ।[१]

पुरुष : मैंने फिर भी अपनी विशेषता नहीं खोई है ।

दूसरी युवती : फेड अप[२]. . .बोर !

[सब एक-एक कर उसी बेंच पर बैठ जाते हैं ।]

पहला युवक : वक्त काटने के लिए यहाँ सिगरेट भी नहीं ।

दूसरा युवक : आज सुबह से सिगरेट नहीं पी ।

पहली युवती : चलिए. . .बारी-बारी से कोई कहानी कहिए ।

पुरुष : यही अच्छा रहेगा ।

---

१. मैं चूर हो गया हूँ । २. बन्द करो ।

Ghulam Haider

पहला युवक : मुझे कोई कहानी नहीं आती !

दूसरा युवक : मुझे भी नहीं ।

पुरुष : मुझे आती है. . .पर मेरी इच्छा नहीं ।

पहली युवती : आप सुनाइए ।

दूसरी युवती : कोई याद नहीं ।

[सन्नाटा]

पहली युवतीं : अच्छा, मैं सुनाती हूँ—ध्यान से सुनिए !

पहला युवक : मगर जोर जोर से नहीं !

दूसरा युवक : हाँ, आहिस्ते !

[विराम ।]

पहली युवती : सुनिए । एक थे गाँधीजी !. . .ठीक से बैठिए. . .हिलिए डुलिए नहीं । हाँ तो, एक थे गाँधी जी । आप मुँह बन्द कीजिए । इधर-उधर क्या देखते हैं ? सुनिए. . .गौर से सुनिए. . .एक थे गाँधी जी । खुजलाइए नहीं. . .बटन फिर बन्द कर लीजिएगा । हाँ, तो एक थे गाँधी जी । आप टाँग क्यों हिलाते हैं । चुपचाप बैठिए । हाँ तो भइया, एक थे गाँधी जी ! बैग क्यों खोल रही हैं ? मेकअप ठीक तो है । चुपचाप सुनिए । हाँ तो एक थे गाँधीजी !. . .खाँसिए नहीं. . .खाँसिए नहीं । ध्यान से सुनिए । हाँ तो एक थे गाँधी जी । लीजिए, आप तो कान खुजलाने लगे ! मुझे गुस्से से क्यों देखते हैं ? कहानी तो सुना रही हूँ ।

पुरुष : तो सुनाइए न !

पहली युवती : सुनते तो हैं नहीं । सुनिए । एक थे गाँधी जी ।

पहला युवक : आगे बढ़िए न ।

दूसरा युवक : एक थे गाँधी जी. . .एक थे गाँधी जी !

पहली युवती : आप लोग कहानी को आगे बढ़ने ही नहीं देते !

दूसरी युवती : हमने क्या किया ?

पहली युवती : अच्छा सुनिए. . .सुनिए । एक थे गाँधी जी. . .देखिए आप उधर देखने लगे। उधर क्या देख रहे हैं ?

पहला युवक : तो आप सुनाइए न ।

पहली युवती : किसे सुनाऊँ ? कोई सुनने को तैयार भी है ?

दूसरा युवक : कहानी अभी आगे भी बढ़ती है ?

पुरुष : वही एक रट. . .एक थे गाँधी जी. . .एक थे गाँधी जी !

दूसरी युवती : एक ही बात सुनते-सुनते कान पक गए। बोर !

पहली युवती : अच्छा अच्छा. . .सुनिए । ध्यान से सुनिएगा तो कहानी आगे जरूर बढ़ेगी !

सभी : सुनाइए. . .सुनाइए ।

पहली युवती : हाँ, तो भइया एक थे गाँधी जी । देखिए आप जम्हाई लेने लगे ।

पहला युवक : आपसे मतलब ? आप कहानी सुनाइए न ।

पहली युवती : कहानी से मतलब है इन बातों का ।

दूसरा युवक : बकवास ! इन बातों से कहानी का क्या मतलब ?

पहली युवती : तब तक कहानी आगे बढ़ेगी ही नहीं ।

पुरुष : अच्छा. . .अच्छा, अब बिल्कुल कहीं कुछ नहीं होगा । सुनाइए ।

पहली युवती : हाँ, तो भइया मैं सुना रही थी. . .कहाँ तक सुनाया था ?

पहला युवक : (गुस्से में) एक थे गाँधी जी !

पहली युवती : आगे कुछ नहीं सुनाया ? कमाल है. . .ऐसा क्यों ?

पुरुष : उल्लू बना रही हैं ?

दूसरी युवती : यह फर्स्ट क्लास बोर है !

[सब बातों में लग जाते हैं ।]

पहली युवती : देखिए. . .देखिए. . .आप लोग तो गुस्सा करने लगे फिज़ूल बातों पर, कहानी आगे कैसे बढ़े ? आपस में चख-चख करने लगे, फिर कहानी आगे कैसे बढ़े ?

पुरुष : (गुस्से में) तो आगे कहिए न।

पहली युवती : सुनिए। एक थे गाँधी जी।. . .देखिए आप लोग नौकरी की बातें सोचने लगे। आपका ध्यान न जाने किधर है। आप किस कदर डरे हुए हैं।

सभी : आपसे मतलब ? हम भीतर कुछ भी सोचें !

पहली युवती : आप सोचें कुछ और. . .और उम्मीद रखें कि कहानी आगे बढ़े ! कहानी हर्गिज़ आगे नहीं बढ़ सकती।

दूसरी युवती : बन्द करो अपनी मनहूस कहानी।

[सब उठ जाते हैं।]

पहली युवती : कहानी आगे बढ़ती ही नहीं तो मैं क्या करूँ ?

पुरुष : कहानी आगे नहीं बढ़ी ? हम आज़ाद हुए, हमने इतनी तरक्की की. . .

पहली युवती : पर कहानी आगे कहाँ बढ़ी ?

पुरुष : दिमाग खराब है।

[सन्नाटा]

पहला युवक : शायद वजह हम हैं, कहानी आगे नहीं बढ़ती।

दूसरा युवक : क्यों ?

पहली युवती : कहानी तब बढ़ेगी न, जब कुछ होगा।

पुरुष : कुछ हुआ ही नहीं ?

पहली युवती : बस—एक थे गाँधी जी।

पहला युवक : इस तरह यहाँ बैठना गैरमुमकिन है।

दूसरा युवक : चलिए, सुनाइए. . . .

दूसरी युवती : मगर कहानी बढ़नी चाहिए, वरना. . .

पुरुष : मगर वह कहानी नहीं, दूसरी. . .।

पहला युवक : और धीरे-धीरे ।

[सन्नाटा लोग कहानी शुरू करने के लिए इशारे करते हैं। पहली युवती निःशब्द कहानी सुनाने लगती है]

दूसरा युवक : शी ! ! . . .किसी ने झाँककर हमें देखा है।

पुरुष : यह क्या तमाशा ?

पहली युवती : सुना तो रही हूँ।

दूसरी युवती : अपना सर !

पहली युवती : तो बोलकर सुनाऊँ ? सुनिए. . .ठीक से बैठ जाइए. . . बिल्कुल हिलिए डुलिए नहीं । चुपचाप ।. . .हाँ तो एक थे गाँधी जी । सुन रहे हैं न, एक थे गाँधीजी । हाँ तो थे एक गाँधी जी । थे, तब यह तो समझ गए । अब आगे सुनिए. . .सुन रहे हैं न ? हाँ तो एक थे गाँधी जी । भाई थे एक गाँधी जी । मेरा मतलब एक थे गाँधी जी । भाई, थे एक गांधी जी । मेरा मतलब एक गांधी थे । अब आगे यह हुआ कि. . .वह थे. . .और थे । गाँधी जी थे । भाई थे. . .इससू आगे सुनिए । एक थे गाँधी जी । थे, यही तो कह रही हूँ। हाँ, तो एक थे गाँधी जी ।

पहला युवक : (चीखता है) आगे क्या हुआ ?

पहली युवती : यही कि एक थे गाँधी जी ।

दूसरा युवक : वह तो सुन लिया । आगे ?

पहली युवती : आगे, एक थे गाँधी जी. . .अब बताइए मैं क्या करूँ ?

दूसरी युवती : मैं तेरा सिर तोड़ दूँगी !

पुरुष : यह पागल है । मारो इसे !

[सब उस पर टूट पड़ते हैं । युवती गिर गई है । सब दूर खड़े रह गए हैं और क्रोध से लोगों की साँसें फूल रही हैं ।]

पहली युवती : (उठती हुई) आपके जीवन के लक्ष्य हैं नौकरी. . .दफ्तरों में बुड्ढे होने की तनखाह. . .सारे सवालातों के जवाब रहे हैं. . .अपने अलावा किसी और से मतलब नहीं। सब भारत के आदर्श नागरिक. . .सुधार में विश्वास। भारत, संसार के नक्शे में कहाँ है, यह पता नहीं। उसे टटोलकर ढूँढ़ना चाहते हैं। और जब धक्के दिए जाते हैं . . .तो वही ईश्वर याद आता है. . .फिर भी चाहते हैं, कहानी आगे बढ़े। कहानी होना नहीं चाहते. . .कहानी सुनना चाहते हैं। कहानी बढ़ाना नहीं चाहते. . .बस, कहानी अपने आप बढ़ जाए ! कहानी सुनकर मन बहलाना चाहते हैं. . .शून्य को भरने के लिए इन्हें कहानी चाहिए. . .पर कहानी आगे क्यों नहीं बढ़ती. . .यह नहीं पूछते. . .! पैंट्स की क्रीज़ न खराब हो जाए. . .चाहे ये खुद खराब हो जाएँ. . .चाहे धक्के खा-खाकर. . .।

सभी : चुप रहो।

सभी : शी ! शी ! !

पहली युवती : यहाँ दिन-रात, हमेशा, नैतिक पतन देखते-देखते एक सर्वग्रासी निराशा हमें अपनी ओर खींचे लिये चली जा रही है. . .सुनो. . .सुनो आगे की कहानी. . .सुनो।

[बायें दरवाजे पर सहसा कुछ तने हुए हाथ दिखाई देते हैं। उन हाथों में—डैगर, भाले, बन्दूक, तलवार,लोहे के रॉड, छुरी आदि सधे हैं। भयभीत त्रस्त लोगों की नजरें उन तने हुए हाथों से जैसे चिपक जाती हैं। पुरुष के अलावा सभी न चाहते हुए भी उन्हीं हाथों की ओर खिचने लगते हैं]

पुरुष : नहीं. . .नहीं. . .! मत जाओ उधर. . वे हत्यारे हैं. . . रुको. . .रुको. . .!

[सब बढ़ रहे हैं। पुरुष, पहले युवक को पकड़ कर उधर जाने से रोकता है पहला युवक उसे धक्के देता है। पुरुष फर्श पर गिर जाता है। सब चले जाते हैं। हाथ अदृश्य हो जाते हैं। पुरुष उठता है]

पुरुष : मेरा कोई कुछ नहीं कर सकता। मैं अब भी आज़ाद हूँ। मैं उन हाथों को चुनौती दे सकता हूँ। डाँट सकता हूँ। अबे हाथ! आ निकल!...देखिए न, वे हाथ मुझसे डर गए। उनकी हिम्मत नहीं कि वे फिर इधर दिखाई दें।...मैं अब मज़े से बाहर जा सकता हूँ...मगर क्यों जाऊँ? जब तक मेरी इच्छा न हो!...हो सकता है... भीतर मेरी ही नियुक्ति हो जाए। मैं अपने विश्वास पे अटल हूँ...।

[बेंच पर आकर बैठता है और उन्हीं अखबारों को उलटने-पढ़ने लगता है।]

[धीरे-धीरे अँधेरा छा जाता है।]

डा० विपिन अग्रवाल

रेल कब आएगी

डा० विपिन अग्रवाल

[जन्म : सन् १६३१]

आपका जन्म उत्तर प्रदेश में हुआ और आपकी उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में, जहाँ से आपने भौतिक विज्ञान में डी० फिल० की उपाधि प्राप्त की। तभी से आप उसी विश्वविद्यालय में शिक्षक के रूप में काम कर रहे हैं।

विज्ञान के अतिरिक्त विपिन अग्रवाल की चित्रकला में भी विशेष रुचि है, साथ ही आप अच्छे कवि भी हैं। इन विविध रुचियों के कारण आपका व्यक्तित्व अन्य लेखकों से भिन्न प्रकार का है। आप समस्याओं को बौद्धिक स्तर पर देखते हैं और नए से नए प्रयोगों को आत्मसात् करने की चेष्टा करते हैं। आपने जो एकांकी नाटक लिखे हैं उनकी विशेषता यह है कि उनमें हमारे आज के जीवन का बड़ा ही सच्चा और निर्मम रूप उभारा गया है। हमारे आज के जीवन में जो विसंगतियाँ हैं, नारेबाजी के साथ-साथ जो निष्क्रियता है, और समस्याओं की सीधी टकराहट से बचने की जो चेष्टा है उन सब को विपिन अग्रवाल ने तीखे व्यंग्य और गहरी सूझबूझ से देखा है। इसके लिए उन्होंने पश्चिम के ऊलजलूल नाटक का भी उपयोग किया है। ऊलजलूल नाटक में पात्र और स्थितियाँ यथार्थ न होकर काल्पनिक और प्रतीकात्मक होती हैं जिनके माध्यम से जीवन की निरर्थकता और अगति पर प्रहार किया जाता है।

विपिन अग्रवाल के अब तक दो कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं—'धुएँ की लकीरें' और 'नंगे पैर'। उनके नाटकों का पहला संग्रह 'तीन अपाहिज' हाल ही में प्रकाशित हुआ है।

रेल कब आएगी

'रेल कब आएगी' नाटक में विपिन अग्रवाल की रचनाओं की सभी विशेषताएँ मिल जाती हैं। ऊपर से सरल और मामूली दीखने वाले ढंग से लेखक ने हमारे आज के जीवन की अगति, दिशाहीनता, नारेबाज़ी और निष्क्रियता को चित्रित किया है। रेल गति का प्रतीक है जिसके इन्तज़ार में समाज के विभिन्न पात्र प्लेटफार्म पर जमा होते हैं। उनमें दार्शनिक भी हैं, प्रेमी भी, राजनीतिज्ञ भी और अभिनेता भी। उन सब की बात-चीत से मंच पर एक ऐसी तसवीर उभरती है जो हमारे आज के जीवन की प्रतीक बन जाती है। नाटक के चरम क्षण में नाम बदलकर गति का आभास पाना आज के समाज पर गहरा व्यंग्य बन जाता है।

रेल कब आयेगो

पात्र :

१. व्यक्ति

२. शंकर

३. सीता

४. बाबू

५. एक आदमी

६. चाचा

७. मुसाफिर

८. टिकट बाबू

९. नवयुवक

१०. अफसर

११. दूसरा अफसर

१२. दरोगा

१३. टेसन मास्टर

१४. मंत्री

[प्लाटफ़ारम पर शंकर एक बड़े बक्स के ऊपर बैठा दार्शनिक मुद्रा में सिगरेट पी रहा है। एक व्यक्ति पास आ कर खड़ा हो जाता है।]

व्यक्ति : (शंकर के पीछे किसी स्थान को देखते हुए ऐसे स्वर में कि शंकर सुन ले) रेल कब आएगी ! बहुत देर हो गयी . . .।

शंकर : (वैसे ही बैठा रहता है।)

व्यक्ति : (शंकर की ओर देखकर प्रश्नात्मक स्वर में) समय क्या है ?

शंकर : (सिगरेट की राख झाड़कर) यह बहुत मुश्किल सवाल है। अपनी ज़िन्दगी के पिछले दस वर्षों से मैं इसी पर विचार कर रहा हूँ पर अब तक किसी नतीजे पर नहीं पहुँच पाया हूँ।

व्यक्ति : (एक-एक शब्द अलग-अलग बोलते हुए) मैं पूछ रहा हूँ इस समय समय क्या है ?

शंकर : (आगे झुककर) अब तो आपने सवाल और भी मुश्किल बना दिया। पुराने विचारकों ने समय को पृथक्, अटूट और अनादि काल से अनन्त काल की ओर समगति से प्रवाहित पाया था। पर अब, लगता है, समय वह समय नहीं रहा। या यूँ कहना उचित होगा कि समय जो था वह अब भी है पर उसके बारे में हमारी धारणाएँ. . .।

व्यक्ति : (खीझकर) क्षमा करिएगा। मैंने एक सीधा सवाल पूछा था। अगर आप उसका सीधा उत्तर नहीं दे सकते तो रहने दीजिए। (झटके से अपना मुँह बन्द कर लेता है, जैसे नाराज़ हो गया हो।)

शंकर : (जरा मुसकराकर, स्वागत भाषण के स्वर में) लगता है, आप नाराज़ हो गये और मेरे और आपके बीच में कोई ग़लतफ़हमी हो गयी है। लगता है, मैंने आपका सवाल

ठीक से समझा नहीं। सवाल ठीक से समझ लेना आधा उत्तर दे देने के बराबर होता है। आइए, हम लोग बात-चीत फिर से शुरू करें। (सिर उठाकर) हाँ, तो आपका प्रश्न क्या था ?

व्यक्ति : आपका सिर।

शंकर : (अपना सिर टटोलते हुए) मेरा सिर तो ठीक जगह पर रखा हुआ है, इसमें तो कोई गड़बड़ी नहीं है (वह व्यक्ति खीझकर चला जाता है)।. . .या है। (अपने कन्धे एक बार उचकाकर फिर सिगरेट पीने लगता है।) सिर भी एक अजब चीज़ है।

[दो तीन आदमियों को लिये हुए एक लड़के और एक लड़की का राम और सीता की वेशभूषा में प्रवेश।]

सीता : (सामने आकर इधर-उधर देखती है।) रेल किधर से आएगी बाबू ?

बाबू : चल इधर, उधर कहाँ जा रही है ?

एक आदमी : अब की ये रामलीला ठीक से गुज़र जाए तब जानो।

चाचा : मैं बारह साल तक भरवारी में राम बना, कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं हुआ। सब लोग बड़ी श्रद्धा से देखा करते थे। अब भइया, श्रद्धा तो कहीं रही नहीं। (एक बीड़ी सुलगाता है। राम की तरफ़ देखकर) तू पिएगा ?

राम : दे दो चाचा, पता नहीं रेल कब आएगी, शायद रात भर जागना पड़े। (एक बीड़ी लेकर सुलगा लेता है।)

चाचा : (डींग हाँकने के स्वर में) मैं जब राम बनता था तब रेल-फेल से नहीं, बैलगाड़ी से जाता था। बस्ती के बाहर मेरे लिए हाथी आता था, बाजा आता था। एक ज़माना वह आ गया है कि यहाँ से वहाँ तक सब जात के लोगों के

साथ रेल पर और फिर टेसन से रामलीला के मैदान तक रिक्शा पर। श्रद्धा टिके तो कैसे टिके ?

सीता : देखो बाबू, छंगू मेरे चुटकी काट रहा है।

बाबू : चल बे छंगू इधर, कुसुम तू आ बैठ जा इस पर, खड़े-खड़े थक जाएगी। (एक गठरी हाथ से दबा कर रख देता है। सीता उस पर बैठ जाती है।)

सीता : चाचा, रेल कैसे चलती है ?

चाचा : रेल कैसे चलती है ? रेल. . .(सिर खुजलाता है।)

एक आदमी : अरे बिटिया, भगवान राम की कृपा से चलती है, और कैसे—"चलत विमान कोलाहल होई। जय रघुवीर कहइ सबु कोई।"

चाचा : (जैसे प्रेरणा पाकर) और क्या ? "नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान। उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।" और सुन, "प्रेरित राम चलेऊ..." (जोश में आ कर हाथ से विमान के उड़ने और उतरने का अभिनय करता है।)

राम : पर चाचा, यह तो तुम बतला रहे हो कि हवाई जहाज़ कैसे चलता है। कुसुम पूछ रही है. . .

बाबू : अच्छा चुप रह ! चाचा का सिर मत खा।

एक आदमी : अरे चाचा का सिर खा लेगा तो क्या होगा, दूसरा उग आएगा। चाचा राम नहीं रावण बना करता था राम-लीला में। (राम और सीता हँसते हैं।)

शंकर : बच्चों ने एक सवाल पूछा है, उसका उत्तर उन्हें मिलना चाहिए। (सब मुड़कर शंकर की ओर देखते हैं और असमंजस में पड़ जाते हैं।) क्यों बच्चो, तुम लोग स्कूल में पढ़ते हो ?

राम : (बोलने की नाकामयाब कोशिश करता है, फिर 'नहीं' का सिर हिलाता है।)

बाबू : (सँभलकर, शंकर से) आप कौन हैं ?

शंकर : शंकर।

चाचा : (हँसकर) अरे, यह तो भोलानाथ हैं, इनकी बात का बुरा न मानो।

बाबू : नहीं, यह छंगू को बहका रहे हैं।

एक आदमी : अरे कौन यहाँ जिन्दगी काटनी है। अभी रेल आएगी और हम सब चले जाएँगे। थोड़ी देर के लिए दिमाग़ ख़राब करने से क्या फ़ायदा है। (कैसा प्रभाव पड़ा यह जानने के लिए चारों ओर देखता है।)

शंकर : बच्चों के सवालों का जवाब न देने से उनका दिमाग़ बन्द हो जाता है। एक दिन वे सवाल पूछना बन्द कर देंगे। तब तुम क्या करोगे ?

बाबू : जब अक़्ल आ जाएगी तब सवाल पूछना अपने-आप बन्द कर देंगे। इसमें हमें क्या करना है।

शंकर : (बाबू की ओर घूमकर) अक़्ल आने का तुम यह माने समझते हो। अक़्ल आने पर आदमी और ज्यादा सवाल पूछता है। अभी तुम्हारे आने के पहले एक आदमी ने मुझसे बहुत अच्छा सवाल पूछा––समय क्या है ? मैं इसका उत्तर कैसे दूँ ? (चाचा चुपके से जल्दी-जल्दी राम और सीता को वहाँ से हटाकर एक तरफ बैठा देता है। फिर हाथ पकड़कर बाबू और साथ के आदमी को भी ले जाता है। और इशारे से बताता है कि लगता है, शंकर का दिमाग फिर गया है, दूर रहना चाहिए।) वैसे शायद वह पूछना कुछ और चाहता था पर भाषा की बनावट की वजह से पूछ गया कुछ और। अगर थोड़ी देर के लिए मैं मान लूं

कि वह जो पूछना चाह रहा था वही मैं समझा भी था, तो भी. . .(सब चले गये महसूस कर चुप हो जाता है।)

[पहले दर्जे का एक मुसाफ़िर कुली के सिर पर सामान रखवाये एक टिकट जाँचने वाले के साथ आता है। नाटक के दौरान टेसन पर भीड़ धीरे-धीरे बढ़ती है और बीच-बीच में गाड़ी आने की घण्टी बजती है पर गाड़ी आती नहीं। न कोई घण्टी की परवाह ही करता है]

मुसाफ़िर : कुली, सामान यहीं रख दो! (कुली सामान रख देता है।) अभी यहीं ठहरो। (कुली बैठ जाता है।)

टिकट बाबू : मैं अब जा रहा हूँ।

मुसाफ़िर : नहीं, आप नहीं जा सकते। मुझे जगह दिलवाकर जाइएगा।

टिकट बाबू : साहब, इसमें मैं कुछ नहीं कर सकता। छोटा टेसन है, यहाँ एक ही सीट का कोटा है। और आपका नाम सुरक्षित स्थान की सूची में नहीं है। अब मैं क्या कर सकता हूँ?

मुसाफ़िर : मैं यह सब कुछ नहीं जानता। मैं इस गाड़ी से, इसी दर्जे में, इसी सीट पर, इसी समय जाऊँगा और तुम मुझे नहीं रोक सकते।

टिकट बाबू : अगर जगह दूसरे के नाम सुरक्षित है तो मेरा कर्त्तव्य होगा कि वह जगह मैं उस मुसाफ़िर को दिलवाऊँ . . .।

मुसाफ़िर : मैं. . .मैं तुम्हें तुम्हारे कर्त्तव्य से डिगा दूंगा और तुम इस वर्ष के चौबीसवें डिगे हुए टिकट बाबू होगे. . .।

टिकट बाबू : आप इस वर्ष के पच्चीसवें पहले दर्जे के मुसाफ़िर होंगे जो मुझे मेरे कर्त्तव्य से डिगाने में नाकामयाब होंगे।

शंकर : आप दोनों बहुत अनुभवी व्यक्ति मालूम होते हैं।

मुसाफ़िर : (टिकट बाबू से) यह कौन हैं?

टिकट बाबू : (न जानने का कंधा उचकता है।)

मुसाफ़िर : सफ़र करते-करते मेरी जिन्दगी गुज़र गयी पर आज तक मैंने आप-सा टिकट बाबू नहीं देखा।

टिकट बाबू : (शर्माते हुए) आप मेरी तारीफ़ कर रहे हैं. . .।

मुसाफ़िर : (गरम होते हुए) मैंने सफ़र किया है, सफ़र। मैंने ये बाल टेसन पर खड़े-खड़े नहीं पकाये हैं।

शंकर : (सामने देखकर बोलते हुए) इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

मुसाफ़िर : (टिकट बाबू से) यह कौन हैं ?

टिकट बाबू : (न जानने का कन्धा हिलाता है।)

शंकर : (उसी मुद्रा में सामने अनन्त की ओर देखते हुए) बाल के पकने और समय के बीतने में एक सीधा रिश्ता है। बल्कि बाल का पकना समय का एक न उलटा जा सकने वाला माप है। काले से बाल सफ़ेद होते हैं, सफ़ेद से काले कभी नहीं होते। अतः समय हमेशा एक दिशा में परिवर्तित होने वाली राशि है।

मुसाफ़िर : (टिकट बाबू से) यह कौन हैं ?

टिकट बाबू : (न जानने का इशारा करके जाने को होता है।)

मुसाफ़िर : (टिकट बाबू की बाँह पकड़कर) आप जा नहीं सकते, पहले बताइए यह कौन हैं ?

टिकट बाबू : मुझे नहीं मालूम।

मुसाफ़िर : मुसाफ़िर होने के नाते मैं अपने अधिकार जानता हूँ। आपको बतलाना पड़ेगा कि आपके टेसन पर यह कौन बैठा है ?

टिकट बाबू : यह सूचना देना पूछताछघर का काम है, आप वहाँ जाइए।

मुसाफ़िर : रेलवई का हर टिकट बाबू चलता-फिरता पूछताछघर है।

टिकट बाबू : लेकिन मैं तो इस समय टेसन पर खड़ा हूँ। हो सकता है, चलती हुई रेल में आप की बात सही हो।

शंकर : मैं आपके जवाब से सहमत हूँ। कुछ बातें वातावरण के संदर्भ पर आधारित होती हैं। उन्हें सापेक्ष सत्य कहते हैं। कुछ निरपेक्ष और शाश्वत सत्य होते हैं। जैसे बालों का पकना एक निरपेक्ष एवं शाश्वत सत्य है। आपका चलता-फिरता पूछ-ताछघर होना. . .।

मुसाफ़िर : अच्छा मैं ही पूछता हूँ। (विनय की मुद्रा बनाकर शंकर से) आपका शुभ नाम ?

शंकर : शंकर।

टिकट बाबू : ओह, तो आप श्री शंकर हैं. . .।

मुसाफ़िर : (एकदम टिकट बाबू की ओर मूड़कर, व्यंग्य से) तो आप लोग पहले से परिचित हैं ?

टिकट बाबू : नहीं, बात यह है. . . ।

मुसाफ़िर : (बिगड़कर) मैं बात-वात कुछ नहीं जानता। जब आप इनको पहले से जानते थे तो आप क्यों बन रहे थे कि जैसे नहीं जानते। यह क्या मज़ाक़ है, क्या साजिश है ?

टिकट बाबू : मैं इनको जानता नहीं हूँ पर आप ही के नाम पहले दर्जे की सीट सुरक्षित है। यह रही सूची. . .(जेब में हाथ डालता है।)

मुसाफ़िर : (व्यंग्य से) अच्छा, तभी आप इनको न पहचानने का नाटक कर रहे थे। जरा बताइए, कितना लेकर यह काम किया है आपने ?

टिकट बाबू : इस तरह से सोचना आपका अन्धविश्वास बन गया है। आप मेरा अपमान कर रहे हैं।

मुसाफ़िर : (ऊँची आवाज में) अपमान ही नहीं, अभी मैं आपकी मरम्मत भी करूँगा। (कुछ लोग इधर-उधर से आकर इकट्ठे हो जाते हैं।) आप जनता को लूटते हैं और बेवक़ूफ़ बनाते हैं। आप. . .।

टिकट बाबू : (बाँहें समेटते हुए) जनाब, होश सँभाल कर बात कीजिए। लोग बीच-बचाव करके दोनों को अलग कर देते हैं। टिकट बाबू बड़बड़ाता हुआ एक ओर चला जाता है, मुसाफिर दूसरी ओर। बाकी लोग भी तितर-बितर हो कर अपनी-अपनी जगह वापिस चले जाते हैं।)

[पतली मोहरी की पतलून पहने एक नवयुवक हाथ में रेल की समय-सारणी लिये हुए आता है और शंकर के सिर पर खड़ा होकर उसे पढ़ने लगता है।]

शंकर : (बगल में जगह करते हुए, नवयुवक से) बैठ जाइए!

नवयुवक : (जैसे बात और आगे न बढ़े इसलिए यंत्रचालित-सा बैठ जाता है, पर समय-सारणी पढ़ना जारी रखता है।)

शंकर : क्या पढ़ रहे हो ?

नवयुवक : (बिना नजर उठाये) टूँडला जाने वाली सब गाड़ियाँ देख रहा हूँ।

शंकर : (रुचि लेते हुए) ? सब गाड़ियाँ क्यों देख रहे हो ?

नवयुवक : (समय-सारणी बन्द करते हुए) और क्या करूँ, आप ही बताइए, मैं वहाँ जा तो सकता नहीं।

शंकर : क्यों, जा क्यों नहीं सकते ?

नवयुवक : बात यह है. . .बात यह है कि वहाँ रजनी गयी हुई है।

शंकर : तब तो बहुत अच्छी जगह होगी, वहाँ तुम्हें जाना चाहिए। अभी रेल आएगी. . .।

नवयुवक : (दर्द से झूमकर) नहीं, नहीं, नहीं ! रेल आएगी पर मैं नहीं जा पाऊँगा। (शंकर की ओर देख कर) मैं रजनी से प्रेम करता हूँ इसलिए वहाँ नहीं जा सकता।

शंकर : मैं समझा नहीं। अगर प्रेम करते हो तब तो अब तक तुम्हें टूँडला चले जाना चाहिए था।

[मौक़ा पा कर राम आकर शंकर से पूछता है, "रेल कैसे चलती है ?" । शंकर बताने को होता है पर तुरन्त सीता बाबू से उसकी शिकायत कर देती है और राम डाँटकर बुला लिया जाता है ।]

नवयुवक : आपने, लगता है, कभी प्रेम नहीं किया ।

शंकर : मैं दार्शनिक हूँ, तर्कशास्त्र का विशेषज्ञ हूँ, मुझे प्रेम करना तर्कसंगत नहीं लगा और न समय ही मिला. . .।

नवयुवक : मैं आपको देखते ही यह जान गया था ।

शंकर : कैसे ? क्या. . .।

नवयुवक : जो प्रेम करता है वह लिफ़ाफा देखकर मज़मून पहचानने लगता है । उसके लिए हर चेहरा एक लिफ़ाफा हो जाता है । आप नहीं जानते कितने तरह के लिफ़ाफे होते हैं दुनिया में । धीरे-धीरे प्रेमी संसार को समझने लगता है । संसार उसके लिए एक बहुत बड़ा लिफाफा हो जाता है । वह खुद साधारण व्यक्ति नहीं रह जाता ।

शंकर : लगता है, तुम ठीक कह रहे हो ।

नवयुवक : (अपने जोश में अनसुनी करके) सारे संसार की आँखें उस पर गिद्ध की तरह टकटकी बाँधे रहती हैं । एक ग़लत क़दम उसने रखा नहीं, अपनी प्रेमिका की ओर वह ज़रा सरका नहीं, कि तुरन्त अपने काम में लिपटे हुए लोग झटके से सजग होकर उसकी ओर उँगलियाँ दिखाने लगते हैं, उसे बातें सुनाने लगते हैं, उसे ज़लील करने लगते हैं, मानो वह अपराधी हो । जैसे मुसाफ़िर रेल पर टूट पड़ते हैं उसी तरह ये लोग प्रेमिका की ओर जाते हुए प्रेमी पर टूट पड़ते हैं । आप इन लोगों को नहीं जानते **(फैला हुआ हाथ घुमाकर टेशन पर एकत्रित लोगों की** ओर इशारा करता है) । आप मेरे दर्द को नहीं समझ सकते. . .मैं अकेला हूँ. . .।

शंकर : (सहानुभूति के स्वर में) कुछ-कुछ तुम्हारी स्थिति का एहसास हो रहा है मुझे. . .।

नवयुवक : नहीं, नहीं हो सकता आपको ।. . .अभी गाड़ी आयेगी। यह तमाम भीड़ उस पर लद कर टूँडला चली जाएगी। इस भीड़ को नहीं मालूम कि रजनी वहाँ है। इसलिए इन लोगों को कोई फ़िक्र नहीं। अपने अज्ञान में यह मुक्त हैं, मस्त हैं। पर मैं जानता हूँ कि रजनी वहाँ है। और मेरे गाड़ी में बैठते ही यह बात कोई आकर तेज़ी से अफ़वाह की तरह फैला जायेगा। और ये सब लोलुप लोग अजीब निगाहों से मेरी ओर देखने लगेंगे। ओफ़, काश, यह गाड़ी आज न आये। मैं आज मूर्खों और पत्थरदिलों से भरी गाड़ी को टूँडला की ओर जाते हुए देखने से एक बार बच जाऊँ. . .।

शंकर : तुम बुज़दिल, आत्मकेन्द्रित और स्वार्थी हो। वैसे, मैं लोगों को तौलना और उन पर राय बनाना पसन्द नहीं करता हूँ, पर. . .।

नवयुवक : पर मुझ पर हाथ साफ़ करने में आपको भी कोई झिझक नहीं हुई। मेरे लिए यह कोई नया अनुभव नहीं है। मैं प्रेमी हूँ इसलिए निरीह हूँ। मैंने आपसे भी अच्छे और भले दीखते हुए आदमियों को सहसा बदलते हुए देखा है। आप. . .।

[फिर मौक़ा पाकर राम आकर शंकर से अपना सवाल पूछता है और उत्तर मिलने के पहले ही डाँटकर बुला लिया जाता है। नवयुवक समय-सारणी पढ़ने लगता है। शंकर चुपचाप एक सिगरेट और जला लेता है। सहसा टेसन पर बहुत-सा सामान लाकर कुली उतार देते हैं। कुछ अफ़सर आकर इस सामान के

आस-पास खड़े हो जाते हैं। पहले दर्जे का मुसाफ़िर भी आकर खड़ा हो जाता है।]

मुसाफ़िर : (एक अफ़सर से) कौन साहब जा रहे हैं इस गाड़ी से जनाब ?

अफ़सर : यातायात के मंत्री जी।

मुसाफ़िर : (खुश होते हुए) श्री आनन्दभजन जी जा रहे हैं क्या इस गाड़ी से ?

अफ़सर : हाँ, पर गाड़ी है कहाँ ?

मुसाफ़िर : मालूम नहीं।

अफ़सर : गाड़ी को यहाँ खड़ा मिलना चाहिए था और वह यहाँ से नदारद है, अजब बात है। (कई अफ़सर यह सुनकर घबड़ा-से जाते हैं।)

दूसरा अफ़सर : और मंत्री जी तो आते होंगे। अब क्या होगा ? (इतने में टिकट बाबू उधर से जाता हुआ दिखाई देता है। उसे आवाज देते हुए) ओ, टिकट बाबू !

टिकट बाबू : (पास आकर, मुसाफ़िर को अपने ऊपर, अब फँसे बच्चू वाली हँसी उड़ेलते हुए पाकर, मुँह फेरकर) क्या है ?

अफ़सर : गाड़ी कहाँ है ?

टिकट बाबू : मुझे नहीं मालूम।

अफ़सर : (बिगड़कर) तो किसे मालूम होगा, मैं ज़िला मजिस्टर बोल रहा हूँ।

टिकट बाबू : आपकी जोड़ी के हमारे विभाग में टेसन-मास्टर हैं। आप जाकर उनसे पूछिए।

अफ़सर : मैं नहीं जाऊँगा, वही यहाँ आएँगे। (इशारे से दरोग़ा को बुलाकर) ज़रा टेसन-मास्टर को बुलवाइए।

दरोग़ा : (एक सिपाही को बुलाकर) जाकर टेसन-मास्टर साहब से कहो कि ज़िला-मजिस्टर साहब उनको याद कर रहे हैं।

टिकट बाबू : (जाने को होता है ।)

अफ़सर : अभी आप भी यहीं रहिए ।

टिकट बाबू : (रुक जाता है ।)

मुसाफ़िर : (बेशर्मी से मुसकुराता है ।)

टेसन-मास्टर : (मोटे होने के कारण हाँफ़ते हुए आकर टिकट बाबू से) क्या हुआ वर्मा जी, सब ठीक तो है. . .?

टिकट बाबू : (ज़िला मजिस्टर की ओर इशारा करके) इन्होंने आपको बुलाया है ।

टेसन-मास्टर : (जिला मजिस्टर को देखकर नमस्कार करते हुए) ओह, हो, चतुर्वेदी जी आप, ओह हो, आप, भई कुछ पान-वान लाओ. . .।

अफ़सर : नहीं, इस समय रहने दीजिए । यह बताइए कि गाड़ी कहाँ है ? आपके पास सूचना भिजवा दी गयी थी कि यातायात के मंत्री गाड़ी के समय से एक घण्टे बाद टेसन पहुँचेंगे इसलिए आप गाड़ी रुकवाए रहियेगा । लगता है आपने उसे जाने दिया । आप हम सब की बढ़ती ले कर रहेंगे क्या ?

टेसन-मास्टर : पर साहब, मैं क्या करूँ, गाड़ी तो अब तक आयी ही नहीं ।

सब अफ़सर : (एक साथ) **आयी ही नहीं !**

अफ़सर : एक तो गाड़ी को एक घंटे से यहाँ खड़ा मिलना चाहिए था, वह न होकर आप मुझे बता रहे हैं कि गाड़ी आयी ही नहीं । तो अगर आयी नहीं तो गयी कहाँ ?

टेसन-मास्टर : यही तो मैं भी मालूम करने की कोशिश कर रहा हूँ, पर नैनी कुछ जवाब ही नहीं दे रहा है । कोई खबर ही नहीं है । हो सकता है, डिब्बों की कमी के कारण कलकत्ते से चली ही न हो । परसों भी नहीं आयी थी । देखिए, फिर मालूम करता हूँ । (चला जाता है ।)

[यातायात के मंत्री कुछ लोगों से घिरे हुए आ जाते हैं। मुसाफ़िर आगे बढ़कर उन्हें झुककर प्रणाम करता है। वह मुसाफ़िर को पहचान लेते हैं।]

मंत्री : (जिला मजिस्टर से) भई सामान यहाँ क्यों रखा है, गाड़ी पर रखवा दीजिए न।

अफ़सर : जी, गाड़ी अभी आयी नहीं है।

मंत्री : अच्छा, ठीक है। (मुसाफ़िर से) देखिए, किन दिक्कतों में हम लोगों को अपना देश-कार्य करना पड़ता है।

मुसाफ़िर : जी हाँ, जी हाँ, आपकी सारी कुर्बानियों का इतिहास मुझे मालूम है। यह देश धन्य है आपको पाकर।

मंत्री : (जिला मजिस्टर से) उसके बाद वाली गाड़ी कब आयेगी? (नवयुवक को समय-सारणी पढ़ता देखकर आगे बढ़ कर उसके हाथ से ले लेता हैं। उलट-पलट कर समय देखने की कोशिश करता है, पर कुछ समझ में नहीं आता।)

मुसाफ़िर : लाइए, मैं देखूँ, आप नाहक परेशान होंगे इस छोटे से काम में। देश के इतने बड़े-बड़े मसले हल करने रहते हैं आपको। (समय देखने की कोशिश करता है पर उसे भी समय-सारणी देखना नही आता।)

मंत्री : (समय-सारणी मुसाफ़िर से लेकर) अरे जाने भी दो। (समय-सारणी टिकटबाबू को पकड़ाकर, ज़िलामजिस्टर से) देखिए, ऐसा करिए कि समय-सारणी में लिखी गाड़ियों का कोई भरोसा नहीं है इसलिए कल सुबह के नाश्ते के बाद, कोई दस बजे तक, अलग से मेरे लिए एक विशेष गाड़ी ही टेसन-मास्टर से कहकर मँगवा दीजिए। वही ठीक रहेगा। (मुसाफ़िर से) आइए चलिए, अब यहाँ क्या करिएगा!

[मंत्री आदि चले जाते हैं, फिर अफ़सर भी। सामान रह जाता है। नवयुवक उठकर टिकट बाबू के हाथ से अपनी समय-सारणी छीन लेता है और फिर पढ़ने लगता है। शान्ति-सी छा जाती है। अब से पर्दा गिरने तक भीड़ धीरे-धीरे, पर बिना शोर किये, बढ़ती है।]

शंकर : (नवयुवक से) क्या तुम्हें प्रेम करने में मज़ा आता है ?

नवयुवक : (बिना आँख उठाये) नहीं, इसमें बहुत दर्द सहना पड़ता है, घंटों टेसन पर बैठे रहना पड़ता है। पर एक बार प्रेम कर लेने पर इससे छुटकारा नहीं मिल सकता। इसका कोई इलाज नहीं है।

शंकर : मेरे पास है।

नवयुवक : (शंकर की ओर देखकर) क्या ?

शंकर : तर्क शास्त्र का अध्ययन कर लेने से यह रोग पास नहीं आता। और अगर आ चुका होता है तो चला जाता है।

नवयुवक : तर्कशास्त्र का अध्ययन बहुत मुश्किल तो नहीं पड़ेगा ? वरना एक बला से छुटकारा पाने के चक्कर में दूसरी में फँस जाऊँ।

शंकर : नहीं, मुशकिल नहीं है। उदाहरण की सहायता से इसकी प्रकृति तुम्हें समझा सकता हूँ। शुरू करने के लिए समझ लो कि इसमें कुछ मान्यताए होती हैं। इन्हें मानकर बात आगे बढ़ायी जाती है।

नवयुवक : जैसे ?

शंकर : जैसे...जैसे...मान लो, एक दुनिया है जिसमें टेसन है, रेल है, समय-सारणी है और मुसाफ़िर हैं। और मान लो कि टेसन के नाम में और शहर के नाम में कोई आपसी सम्बन्ध नहीं है।

नवयुवक : अच्छा, यह तो मज़ेदार दुनिया होगी।

शंकर : अब मान लो, यह टेसन इलाहाबाद है ।

नवयुवक : यह टेसन इलाहाबाद है ।

शंकर : अब समय-सारणी देख कर बतलाओ, यहाँ कौन-कौन-सी गाड़ियाँ आती हैं !

नवयुवक : (बिना समय-सारणी देखे ही, जैसे सब याद हो) तूफ़ान ३-३३ पर, आसाम मेल ४-५८ पर, पार्सल ५-१५ पर, कालका मेल. . . .

शंकर : बस ठीक है, इतने से काम चल जायगा ।

नवयुवक : (खोये हुए स्वर में) इतने से काम चल जायगा !

शंकर : मान लो एक गाड़ी टेसन पर खड़ी है ।

नवयुवक : खड़ी है ।

शंकर : सुबह ३-३३ पर जो मुसाफ़िर यहाँ टेसन पर आएँगे वे सामने खड़ी गाड़ी को क्या समझेंगे ?

नवयुवक : तूफ़ान मेल ।

शंकर : ठीक है, वह तूफ़ान मेल समझकर उस पर बैठ जाएँगे ।

नवयुवक : बैठ जाएँगे ।

शंकर : मान लो, वह गाड़ी वैसे ही खड़ी रहती है ।

नवयुवक : खड़ी रहती है ।

शंकर : ४-५८ पर फिर मुसाफ़िरों का एक दल आयेगा । वह सामने खड़ी गाड़ी को क्या समझेगा ?

नवयुवक : आसाम मेल ।

शंकर : और अब क्या होगा ?

नवयुवक : (सहसा आलोक पाते हुए) और वे लोग उसे आसाम मेल समझ कर उस पर बैठ जाएँगे ।

शंकर : फिर ?

नवयुवक : फिर ?

शंकर : (जैसे उत्साह और सहारा देते हुए) हाँ, फिर ?

नवयुवक : (दिमाग पर जोर डालकर, सोच-सोचकर) फिर ५-१५

पर नये मुसाफ़िर आएँगे और खड़ी गाड़ी को पार्सल मान कर उस पर बैठ जायेंगे ।

शंकर : (खुश होते हुए) ठीक, बिलकुल ठीक । इस प्रकार वही गाड़ी २४ घण्टे खड़ी-खड़ी सारे मुसाफ़िरों को भर लेगी ।

नवयुवक : कमाल है, अब क्या होगा । पर तब तो इसमें बहुत भीड़ हो जाएगी ।

शंकर : तर्कशास्त्र की दृष्टि से भीड़ का प्रश्न निरर्थक है । स्थिति के जिस ढाँचे का विश्लेषण हम लोग कर रहे हैं उससे इसका कोई सरोकार नहीं है ।

नवयुवक : मान लिया, पर अब होगा क्या ?

शंकर : अब पूर्व-मान्यता के अन्तर्गत क्योंकि शहर और टेसन में कोई अटूट सम्बन्ध नहीं है, हम टेसन के नाम की पट्टी बदल कर इलाहाबाद से दिल्ली की कर देते हैं ।

नवयुवक : कर देते हैं ।

शंकर : तब सुबह दिल्ली कौन-सी गाड़ी पहुँचाती है ?

नवयुवक : ६-०५ पर दिल्ली एक्सप्रेस, ९-०० पर जनता, १०-२८ पर अपर इण्डिया, १७-२५ पर आसाम मेल. . .

शंकर : तो ६-०५ पर दिल्ली एक्सप्रेस की सवारियाँ उतर जाएँगी, ९-०० पर जनता की. . .।

नवयुवक : १०-२८ पर अपर इण्डिया की, १७-२५ पर आसाम मेल की. . .अहा, हा, बड़ा मज़ा आ रहा है ।

शंकर : और अगले २४ घण्टे में गाड़ी बिलकुल खाली हो जायेगी और फिर दिल्ली की पट्टी हटा कर. . .

[इस बीच टेसन पर भीड़ बहुत हो जाती है । मौका पा कर राम आकर शंकर से सवाल करता है—"रेल कैसे चलती है ?" और पहला व्यक्ति आ कर पूछता है—" समय क्या है ?"]

●●

[illegible]